

तृतीय सोपान - अरण्य काण्ड

ओम तत्सदात्मने नमः

सो. उमा राम गुन गूढ़, पंडित मुनि पावहिं विरति।

पावहिं मोह विमूढ़, जे हरि विमुख न धर्म रति॥

उमा राम गुन गूढ़। शंकर जी बताते हैं पार्वती से कि राम के चरित्र गूढ़ हैं। गहराई में छिपे हैं। परमात्मा ऐसा विषय नहीं है, जिसे हम बाहर के पदार्थों की तरह देख-समझ लें। वह इंद्रियों से, मन से, बुद्धि से, सबसे परे है। लेकिन उस गूढ़तम आत्मस्वरूप तक पहुंचने में इनका उपयोग किया जाता है। दस इंद्रियां और चार अंतःकरण-मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार -ये चौदह अध्यात्म कहे गये हैं। अभी हम-तुम जो स्थूल स्तर पर जीवन यापन कर रहे हैं, इसके और आत्मा के बीच की कड़ी इन्हें कह सकते हैं। शरीर स्थूल है, दिखाई पड़ता है। इंद्रियां और मन बुद्धि आदि सूक्ष्म हैं। और इनमें जो चेतन का प्रतिबिम्ब है, वह और भी बहुत बारीक है। इनसे भी बारीक आत्मा है। तो जो आदि आत्मा है, सर्वत्र व्यापक है, उस आत्मा को उस परमात्मा को, ये अध्यात्म टच (स्पर्श) कर सकते हैं। येही संकेतों से उसे उजागर करते हैं। हमको समझाने का प्रयास करते हैं। इसलिए इनको अधिदैव कहा जाता है - अध्यात्म कहा जाता है। यह सूक्ष्म जगत की समाज है, दूसरे लोक की। देव लोक की समाज है। हर इंद्रिय में देवता बैठे हैं।

‘इंद्रिय द्वार झरोखा नाना।

तंह तंह सुर बैठे करि थाना॥ ’

और इन्द्र इनका राजा है। इन्द्र कहते हैं, इंद्रियों का अधिपति जो मन है, उसे। तो इस तरह से यह देव लोक की समाज, परमात्मा के पास तक पहुंच वाली है। इसलिए इसको महत्व दिया जाता है।

और बाहर कहीं देव लोक बना नहीं है। न कोई देवता कहीं भंडार खोले बैठा है। यह सब अपने ही अन्दर हैं। अब इन्द्र तो इन्द्र है, नारद तो नारद है। सतयुग, त्रेता, द्वापर सदैव हैं। काल करके ये बाधित होते नहीं। ये अजर अमर हैं। इनके माता, पिता, गोत्र परम्परा होते नहीं। तो ये सब अर्न्तजगत की समाज है। उसमें भगवान के चरित जो होते हैं अलौकिक हैं, लौकिक नहीं हैं। गूढ़ हैं। इन्हें जानकार

लोग ही देख समझ पाते हैं। सब लोग नहीं जानते आध्यात्मिक विषय को। इसलिए लोग भगवान को भी दुनियावी तरीके से लेते हैं, और सही निष्कर्ष नहीं ले पाते।

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषण राम बनाए॥

सीतहिं पहिराए प्रभु सादर । बैठे फटिकसिला पर सुंदर॥

सुरपति सुत धरिवायस वेषा। सठ चाहत रघुपति बल देखा॥

जिमि पिपीलिका सागर थाहा। महा मंदमति पावन चाहा॥

सीता चरन चोंचहति भागा। मूढ मंदमति कारन कागा॥

यह घटना चित्रकूट की है। चित्रकूट में चरित कर रहे हैं। चित्रकूट कहते हैं चित्त को। जब चित्त कूट दिया जाय, तब चित्रकूट बन जाता है। चित्त में आने वाले संसारी चिंतवन न रह जायें। निरंतर ईश्वर का चिंतवन होने लगे। चित्त में यह राम चरित चिंतन की मंदाकिनी प्रवाहित होती रहे, तब यह चित्त चित्रकूट कहा जाता है।

‘रामकथा मंदाकिनी, चित्रकूट चित चारु।

तुलसी सुभग सनेह वन, सिय रघुवीर विहारु॥’

तो यह जो स्फटिकशिला का प्रसंग है, किसी अनुरागी साधक के शान्त - निर्मल चित्त भूमिका में होने वाली ईश्वरीय लीला का चित्रण है। यह कोई बाहर की बात नहीं है भौतिक जगत की। कि वह इन्द्र का लड़का जयंत था। और फिर वह कौआ बनकर, सीता को अपमानित करके, राम की परीक्षा लेना चाहता था। यह तो अन्तर्जगत की बातों को सांसारिक ढंग से प्रस्तुत करने का तरीका है संतो का। गूढ़ रहस्य की बातों को, कथानकों में छिपाकर रखते हैं। गंभीर गुप्त ज्ञान को यों ही परोसते जाते, तो उसका महत्व घटता है। कीमती चीज को थोड़ा छिपाकर रखा जाता है। तो आध्यात्मिक क्षेत्र की जो गंभीर समझ है और गोप्य युक्तियां हैं साधना की, उन्हें थोड़ा गहराई में रखते हैं। यह गोस्वामी जी का अपना ढंग है। इसी तरह कबीर ने उलटवासियां लिखी हैं, सूरदास ने कूट के पद लिखे हैं। सूफी संतो ने भी राजा-रानी की कहानियों में ईश्वरीय रहस्य की बातें छिपाकर रखी हैं। तो यह तरीका पहले से चलता रहा है। दृष्टान्त और दार्ष्टान्त का तरीका है।

यहां मतलब यह है कि चित्त की शान्ति और निर्मलता से जब साधक की गति-मति सब प्रकार से अपने में एडजस्टिंग पा जाती है, तब उसको उल्लास आता है, खुशियाली आती है, कि अब हम ठीक हैं। हमारी इनर्जी (क्षमता) या साधनात्मक उपलब्धि जो है, वह बहुत अच्छी है। अपनी पहुंच को निहार कर साधक को प्रसन्नता होती है। जिसके लिए कभी सोचा भी नहीं था। बस कल्पना ही कर लेता था कि

क्या कभी हम ऐसे हो पाएंगे ? क्या कभी यह पहुंच या यह रहनी हमारी भी होगी ? अब जब वह स्थिति पा जाता है, तो आह्लादित हो उठता है। तो जब ऐसी कंडीशन बनती है साधक के अन्दर, तो मानो वह विकारों को अपने आप ही न्योता देता है।

साधक के चित्त की निर्मलता,स्फटिक शिला है। उस पर बैठे हैं। साधक के मन में जो प्रसन्नता और उल्लास और विह्वलता के भाव आ रहे हैं, अपनी क्षमता को देखकर, यह राम के द्वारा सीता का श्रृंगार करना हुआ। तो जब हम अपनी पहुंच पर, अपनी उपलब्धि पर प्रसन्न होते हैं। मन ही मन सराहते हैं, आत्मप्रशंसा से विभोर हो उठते हैं, तो उसका तत्काल रिएक्शन होता है। बुराई का अटैक हो जाता है। जयंत का अटैक हो गया। इन्द्र है विषय अनुगत मन, और मन के अन्दर उस विषय की जानकारी को जयंत कहते हैं। तो इस जानकारी रूप जयंत ने साधक के अन्दर उसकी क्षमता को आहत कर दिया। शक्ति का हास हुआ। तो यहां साधक की एक विशेष मनोदशा का चित्रण किया गया है।

अब अगर तुम लोग बाहरी कथानक में चले गए तो क्या होगा ? मन में कई तरह के तर्क उठेंगे । सोचोगे कि देवताओं के राजा इन्द्र का लड़का, भगवान के साथ इतना बड़ा दुर्व्यवहार क्यों करेगा ? येदेवता लोग तो भगवान के बहुत नजदीक होते हैं। फिर राजा दशरथ की भी इन्द्र के साथ आत्मीयता थी। तो इनके लड़को में ऐसी वैमनस्यता क्यों होनी चाहिए ? ऐसे तर्क आएंगे। फिर कोई ज्यादा पढ़ा लिखा आदमी होगा, तो कह देगा कि यह प्रसंग तो वाल्मीकि ने लिखा ही नहीं, यह तो गोस्वामी जी की कल्पना है। तो उपेक्षा कर देगा। तो यह दुनिया का झगड़ा है। साधक को इससे मतलब नहीं रहता। वह तो अपने अन्तर्जगत में रमता है। मानस की रीडिंग (अध्ययन) में रुचि लेता है। और इस तरह से लाभ ले सकता है।

चला रुधिर रघुनायक जाना। सीक धनुष सायक संधाना॥

प्रेरित मंत्र ब्रह्म सर धावा। चला भाजि वायस भय पावा॥

दो.- अति कृपाल रघुनायक, सदा दीन पर नेह।

तासन आइ कीन्ह छल, मूरख अवगुन गेह॥

होता क्या है, कि जब साधक अपनी साधनात्मक प्रगति को, अपनी खुद की उपलब्धि मान लेता है,इसका एहसास मन में करता है, खुश होता है, तो एक मीठा सा अहंकार आ जाता है, कि इतना मैने कर लिया । क्षमतावान हो गया हूँ। इस खराबी से वह मार खा जाता है। मार खा गया तो शक्ति का क्षरण हुआ। शक्ति में रिसाव हो गया, सीपेज हो गया। जो क्षमता बनी थी, वह क्षीण होने लगी। सीता ही

शक्ति है। सीता के आहत होने का, खून बहने का मतलब है, कि साधक की क्षमता में कमी आई। उसमें खरोंच आ गई। तो अब शक्ति में जो क्षरण होने लगा, उसे जब समझ लिया गया तो फिर उपाय होने लगा - उस खराबी को हटाने का -

**“चला कधिर रघुनायक जाना।
सीक धनुष सायक संधाना।”**

सुरति ही सीक है। सुरति जो आ गई थी आह्लाद की तरफ, आनन्द लेने में लगी थी, कि मैं ठीक हूँ। मेरी साधना अच्छी है। इन उल्लासमय संकल्पों और विचारों के फूलों से अपनी उपलब्धि का श्रंगार और अभिनन्दन करने में लगा था साधक। इसके रिएक्शन (प्रतिक्रिया) के फलस्वरूप खराबी आई। तो उसे होश हुआ-झट समझ में आ गया कि यह मेरी गलती का परिणाम है। अन्तर्जगत में यह स्वीकृति की वाणी मिल गई। ध्यान रूपी धनुष में जब यह परा वाणी रूपी वाण आया, जब सुरति उसमें लगी, तो संधान हो गया। सुरति इधर लग गई। गलती की क्षमा याचना में लग गई। यह सुरति रूपी सीक का वाण चला तो फिर,

‘चला भाजि बायस भय पावा।’

जब बारीकी से समझ में आ गया कि यह मेरी भूल थी, जो मैं खुशियाली मनाने लगा था। तो फिर गलती महसूस होने पर, गलती की क्षमा याचना में अन्दर ही अन्दर सुरति लग गई। फोर्स के साथ जब सुरति क्षमा याचना में लग गई, तो उस जानकारी रूपी जयंत को, तीनों लोकों में अन्दर-बाहर कहीं भी जगह नहीं रह गई। अपनी गलती को स्वीकार कर लेना, और उसके लिए क्षमा याचना कर लेना, यह बहुत प्रभावशाली शस्त्र है, साधक के पक्ष में। यह एक अच्छी युक्ति है, जिसके द्वारा साधक अपना सुधार कर सकता है। यह मंत्र है। जब इसमें सुरति काम करने लगती है, तो यह ‘प्रेरित मंत्र ब्रह्म सर’ बन जाती है। ब्रह्मास्त्र बन जाती है। क्षमा याचना से सब गलतियां माफ हो जाती हैं। सुधार हो जाता है।

इसलिए साधक को जो भी सफलता मिले, उसे उदासीन भाव से ले, और भगवान से प्रार्थना कर ले, कि हे भगवान! ये अच्छी बातें जो मुझमें आ रही हैं, इनमें मेरा कोई पुरुषार्थ नहीं है। यह सब आपकी कृपा है। मुझमें कोई क्षमता नहीं है। इस तरह भगवान को समर्पित कर दे। और अगर अपनी प्रगति का श्रेय अपने आपको देगा, तो बिना मार खाए बच नहीं सकता। यही है ऐक्शन-रिएक्शन (क्रिया-प्रतिक्रिया)। प्रगति हुई तो अहंकार आया, अहंकार आया तो मार खा गए। मार खाए, तो फिर होश आया। होश आया, तो सुधार हुआ। ये अच्छाई-बुराई, उन्नति-अवनति, एक दूसरे

से पैदा हो जाती हैं। इसमें तो हनुमान बन जाय, तब ठीक है। हनुमान का मतलब जो मान का हनन कर दे। अभिमान करना छोड़ दे। तो अमानी साधक इन सब झंझटों में फंस नहीं पाता। भगवान उसको बचा लेते हैं। भगवान कहते हैं-

‘मोरे प्रौढ़ तनय सम ज्ञानी। बालक शिशु सम दास अमानी॥

करुं सदा तिनकै रखवारी। जिमि बालक राखै महतारी॥

तो साधक के लिए बहुत अच्छी युक्ति है, कि अपने में जो कमी हो, खराबी हो, उसे अपनी माने। गलती अपनी माने। और जो अच्छाई हो, कामयाबी मिल जाय, प्रोग्रेस हो जाय, उसे भगवान की मानकर समर्पित करता चले। तो फिर भगवान उसको संभाल लेते हैं।

अपनी उपलब्धियों का एहसास करना, आनंद लेना, ईगो आ जाना-यह भजन के रास्ते में खराब माना जाता है। इस बुराई को मिटाने के लिए क्षमा-याचना कर ले और भजन में लगा रहे। फिर साधक संभल जाता है। इस दोष को हटाने का यह उपाय है। फिर वह बुराई निकल भागती है। उस जयंत को कहीं रुकने की जगह रह नहीं जाती।

काहू बैठन कहा न ओही।

राखि को सकइ रामकर द्रोही॥

तो समझना चाहिए कि साधक के अन्दर यह सब क्रिया होती है। वहाँ कोई जयंत और कोई धनुष-बाण चलाने वाला नहीं बैठा है। यह सब सुरति का खेल है। जब माया के दायरे में पुराने संस्कारों वश सुरति चली जायगी तो ह्रास होगा। और जब होश आया तो सुरति ईश्वर में लग गई, तो वहाँ अब माया कहाँ रहेगी। ध्यान में आकाशवत हो गए। ध्याता, ध्यान और ध्येय जब एक हो गए तो वहाँ कोई गुंजाइश ही नहीं रह गई माया के लिए। विषय की जानकारी रूपी जयंत को वहाँ कहीं जगह नहीं मिल रही है। तो अब सरंडर हो गया - त्राहि-त्राहि करने लगा। साधक ने दृढ़तापूर्वक माया के उस आवेश को हटा दिया जो उसे आच्छादित करके हानि पहुंचाने वाला था। इससे पता लग गया कि साधक में क्षमता है। यही पता करने तो गया था जयंत - ‘सठ चाहत रघुपति बल देखा।’- इस तरह से भगवान अपनी माया के द्वारा साधक की परीक्षा लेते हैं। कभी गिराते हैं, कभी सहारा देते हैं, और ठोंक पीटकरपक्का करते हैं। तो साधक को घबड़ाना नहीं चाहिए - अच्छा आवे बुरा आवे, लाभ आवे हानि आवे - स्तुति आवे निन्दा आवे, सबको किनारे करके

भगवान को पकड़े रहना चाहिए। परमात्मा में सुरति लगी रहे, बस फिर कोई बाधा नहीं। गोस्वामी जी कहते हैं -

‘सुखी मीन जहं नीर अगाधा ।

जिमि हरि सरन न एकउ बाधा ।।’

हाँ, अगर साधक अपनी गलती देख नहीं पाता, अपनी गलती स्वीकार नहीं करता, क्षमा याचना नहीं करता, अपनी सुरति को उधर से हटाकर इधर ईश्वर में नहीं लगाता है, तब तो उस खराबी के लिए जगह बनी ही रहेगी।

निरंतर ईश्वर की शरण में रहे, इसलिए यह तरीका साधकों के लिए अच्छा माना जायगा। साधक जब साधना में कुछ आगे बढ़ता है तो चित्त की गति को रोकने लगता है। चित्तवृत्ति विषयों की तरफ जाती है, उसे रोकते-रोकते जब रोक लिया जाता है, तब यह चित्त, चित्रकूट कहा जाता है। चित्त में निर्मलता आ गई, इस स्वच्छ शिला पर-स्फटिकशिला पर स्थित हुए। यह एक पहुँच बनी। क्षमता बनी, इज्जती आई। और साधक को अच्छी लगी, प्रिय लगी। तो होना तो यह चाहिए कि इसमें मुग्ध न हो, उस अपनी उपलब्धि का आलिंगन न करे, उसे पाकर उसको सुसज्जित न करे। लेकिन होता अक्सर यही है, कि साधक उल्लास में आकर उसका आनन्द लेने लगता है। राम वहाँ फूलों से सीता का श्रंगार करने लगे। तो इन्द्र का लड़का जयंत, कौआ बनकर आ गया, चोंच मार दिया, चरन मार दिया। साधक की उस लुभावनी और प्रिय वस्तु पर प्रहार हो गया। जिसे वह सहेजने में लगा था। प्रहार कहाँ से हुआ? कि जो मन के अन्दर पूर्व की कल्पनाओं से विषयगत जानकारी आ गई। वह जयंत, और उसकी जो कांक्षा है, वह कौआ। उसके प्रहार से शक्ति का क्षरण होने की स्थिति बन गई। फिर जब अन्दर ही अन्दर समझ काम कर जाती है। संकेत आ जाता है, वाणी मिल जाती है, और गलती मानकर क्षमा याचना कर ली गई, तो वह जानकारी रूप जयंत, वह कांक्षा रूपी कौआ, पराभूत हो गया, सरेण्डर हो गया।

नारद देखा विकल जयंता। लागि दया कोमल चित संता।।

पठवा तुरत राम पहिं ताही। कहेसि पुकार प्रणत हित पाही।।

आतुर सभय गहेसि पद जाई। त्राहि त्राहि दयाल रघुराई।।

नारद कहते हैं आकाश को। साधक के अन्दर नाभि से, इस नभ से जो वाणी मिलती है, संकेत मिलता है। उसके अनुसार जब अपने अहं का परित्याग करके, भूल को स्वीकार कर लिया, क्षमायाचना कर ली गई, तो भगवान सुन लेते हैं।

सुनि कृपाल अति आरत बानी।

एक नयन करि तजा भवानी॥

उसको एक आंख का करके छोड़ दिया। अब विषयात्मक दृष्टि न रह गई। ईश्वरीय दृष्टि रह गई। अब साधक को यह युक्ति पकड़ में आ गई कि यही दृष्टि अच्छी है। यह उसे मिल गई। अब फिर एकसीढ़ी ऊपर आ गया।

तो यह सब एक साधक के अन्दर की बातें हैं। वहाँ ऐसा नहीं है कि जयंत कहीं से आया, सीता को चोंच मार कर भाग गया। साधक का मन तो एक है। जब इस मन में विषय अनुगत संकल्प आते हैं, तब इसे इन्द्र कहते हैं, और इसी मन में ईश्वरोन्मुख संकल्प भी आते हैं। तब इसे दशरथ कहा जाता है। तो दोनों का बराबर अधिकार है इस मन के सिंहासन पर। अर्ध सिंहासन आसन देई। ऐसा मतलब है इसका। यह सब साधक के अन्तर्जगत के अवयव हैं। इनकी ठीक-ठीक एडजस्टिंग हो जाय, यह बहुत बड़ी बात है।

भजन के रास्ते में चलने वालों के सामने कभी सहयोगी भाव आते हैं, कभी बाधक भाव आ जाते हैं। साधक धीरे-धीरे आगे बढ़ता जाता है। तो यह राम की वनयात्रा, सूक्ष्म स्तर की साधना का कथा रूपान्तरण है। चित्रकूट से आगे बढ़े तो कभी ऋषि-मुनियों से भेंट होती है, तो कभी कोई राक्षस मिला। साधन-पथ में कभी उन्नति होती है, कभी विघ्न आते हैं। यह मतलब है इसका। स्फटिक शिला में एक धक्का लगा। उसमें संभल गए तो फिर प्रोग्रेस (उन्नति) हुई। अत्रि-अनसूया के आश्रम पहुँच गए।

‘सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई। सीता सहित चले दोउ भाई॥

अत्रि के आश्रम जब प्रभु गयऊ। सुनत महामुनि हरषित भयऊ॥

पुलकित गात अत्रि उठि धाए । देखि राम आतुर चलि आए॥

अत्रि का मतलब है, त्रिगुणातीत अवस्था। अत्रि से भेंट होने का अर्थ है कि साधक सत, रज, तम तीनों गुणों से परे, गुणातीत अवस्था के समीप पहुँच गया। अनसूया अर्थात् - माया से मुक्त स्थिति मिल गयी। तो ये डिग्रियां हैं, जो साधक को एक-एक करके मिलती हैं। उसको सुशोभित करती हैं। अगर साधक अपने दोषों का प्रच्छलन करता हुआ, विघ्न बाधाओं को हटाता हुआ, साधना के रास्ते में आगे बढ़ता जाय, तो ये डिग्रियां मिलती जाएंगी, उसको अभिनन्दित करेंगी। देखिए अत्रि के द्वारा राम का स्वागत अभिन्दन किया जा रहा है। स्तुति-पूजन से सत्कार कर रहे हैं।

देखि राम छवि नयन जुझने। सादर निज आश्रम तब आने॥

करि पूजा कहि बचन सुहाए। दिए मूल फल प्रभु मन भाए॥

सो. - प्रभु आसन आसीन, भरि लोचन शोभा निरखि।

मुनिवर परम प्रवीन, जोरि पानि अस्तुति करत॥

अब इस अवस्था में पहुँचकर उसकी क्षमता बढ़ जाती है। उसमें अलौकिकता आ जाती है। सीता को दिव्य वस्त्र, आभूषणों से सुसज्जित किया अनसूया ने।

दिव्य वसन भूषण पहिराए।

जे नित नूतन नवल सुहाए॥

सीता शक्ति का रूप है। साधना करने से जो क्षमता साधक को मिलती है, वह सीता अब इस अवस्थामें अलौकिकता से, दिव्यता से युक्त हो जाती है। त्रिगुणातीत अवस्था में साधक के अन्दर दिव्य शक्तियाँ आ जाती हैं। सीता को दिव्य आभूषण पहनाने का यही मतलब होता है कि जब साधक माया से अतीत अवस्था में पहुँच बना लेता है तो उसमें दिव्य शक्तियों का संचार हो जाता है। यह अनसूया अर्थात् असूया (माया) रहित अवस्था, उसकी क्षमता रूपी सीता को अलंकृत कर देती है। उसमें अलौकिकता आ जाती है।

अब यहाँ राइज हुआ साधक, तो फिर एक बाधा आ गई। विराध राक्षस मिल गया।

मिला असुर विराध मग जाता।

आवत ही रघुवीर निपाता ॥

पूर्व में किए गए खराब कर्मों के जो संचित संस्कार हैं- वह है विराध। प्रारब्ध के रूप में इसका उदय होता है। साधक के रास्ते में बाधक बन जाता है। साधक अपने पुण्य कर्मों के प्रभाव से इसका निपात करके आगे बढ़ जाता है। यह बाधा हटी तो फिर प्रगति हुई। शरभंग मिल गए। अनेक ऋषि-मुनियों से भेंट हुई। तो यह साधक के अन्दर सहयोगी भाव हैं सब, जिनसे साधना में गति आती है। आगे बढ़ने में सहयोग मिलता है इन भावनाओं और विचारों से। लेकिन बीच में कभी कोई बाधा भी आ जाती है। इस तरह साधना में यह अप-डाउन (उतार चढ़ाव) चलता रहता है। साधक प्रगति करता है, फिर ठोकर लगती है, फिर संभलकर आगे बढ़ता है। तो इन बाधाओं के आने से साधक में मजबूती आती है। वह इन्हें परीक्षा मानता है, और इसमें सफल होकर आगे निकल जाता है।

यह अनुकूलताएं और प्रतिकूलताएं पूर्व में किए गए कर्मों में अनुसार आती हैं। ये हर एक के सामने आएंगी। इनसे घबराए नहीं। इनको आना चाहिए। अगर न आएंगी दिक्कतें, तो हमारे पाप कर्मों का कर्ज कैसे चुकता होगा। यह माया का कर्जा

इसी तरह से चुकता होता है। जैसे कोई गरीब आदमी, किसी व्योहर(कर्ज देने वाला धनी आदमी) से कर्ज ले लेता है,तो फिर ब्याज दर ब्याज बढ़ता जाता है कर्ज। तो वह बेचारा गरीब आदमी जिंदगी भर पटाता रहता है। ऐसे इस माया-व्योहर का कर्ज सबके ऊपर है। इसे भजन के पुण्य रूपी धन से पटाया जाता है। जब माया का कर्ज चुकता हो जाता है,तब यह माया हमें ईश्वर के पास जाने की इजाजत देती है।

अनेक जन्मों के पुण्यों के प्रभाव से जब अपनी कमियां अन्तःकरण में दिखाई पड़ जायं,और उन्हें स्वीकार कर ले,उनकी क्षमा याचना कर ले। उन्हें हटाए और विघ्नों को काटता चले,भजन में लगा रहे तो साधक राइज होता जाता है। तो जब चित्त स्थिर हुआ,मन में निर्मलता आ गई,माया से उपराम हुए, यह अवस्था मिल गई, अनेक ऋषि-मुनियों के रूप में सजातीय भावनाओं और विचारों से सुसज्जित हो गए तो अब साधक का हौसला बढ़ जाता है। विजातीयों के विरुद्ध ललकारने का साहस बन जाता है।

दो. - निसिचर हीन करउं महि, भुज उठाइ पन कीन्ह।

सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि, जाइ जाइ सुख दीन्ह॥

भुज उठाइ प्रण कीन्ह, ऐसा लगता है कि हमारी समाज में भुजा उठाकर प्रतिज्ञा करने का नियमपहले भी रहा है। आज भी सदन में मंत्री लोग सपथ लेते हैं,तो यह नियम है,लेकिन इसे कोई महत्व नहीं दिया जाता। भुजा उठाने का मतलब है कि पुरुषार्थ के साथ इस प्रतिज्ञा का निर्वहन किया जायगा। कर्तव्य में दृढ़ रहेगा वह। बेइमानी नहीं करेगा। हाँ,तो जब निश्चय पूर्वक साधक साधना में जुटता है, तो स्पीड (गति) आ जाती है,उसमें तेजी आ जाती है। उसके ज्ञान, ध्यान, अनुराग, वैराग्य सबमें फोर्स (प्रभाव या तीव्रता) आ जाता है। इस स्थिति को प्राप्त कर लेने का मतलब है सुतीक्ष्ण से भेंट होना। अब सुतीक्ष्ण से भेंट हो गई। तीव्र वैराग्य आ गया। ज्ञान ध्यान में फोर्स के साथ लग गया तो कुंडलिनी जाग्रत हो गई। यह कुंभज (अगस्त) मिल गए। तो अब वहाँ उस स्टेज (स्तर) पर साधक को अनेक बारीक युक्तियां पकड़ में आ जाती हैं। अलौकिक बातें आ जाती हैं।

ये जो महात्माओं के नाम आए हैं,यहाँ अत्रि,सुतीक्ष्ण,कुंभज इत्यादि ये सब साधनाक्रम में मिलने वाली डिग्रियां हैं स्थितियां हैं,पहुंच हैं। कुंभज उस अवस्था का नाम है, जब साधक की कुंडलिनी जाग्रत हो जाती है। योग साधना में यह बहुत श्रेष्ठ स्थिति मानी जाती है। नाभि कुंडली में विष्णु और लक्ष्मी का निवास है। कुंडलिनी जाग्रत होने का अर्थ है कि साधक को उनकी अनुकूलता मिल गई। वहां से इनर्जी

मिलने लग गई। तो इस कुंभज के पास ले जाने वाला सुतीक्ष्ण है। सु का मतलब अच्छा, तीक्ष्ण माने तीव्र। तो जब सही ढंग से, अच्छे तरीके से और तीव्र गति से साधना होती है, तो तत्काल कुंभज से भेंट हो जाती है। यह बहुत बड़ी डिग्री है। कुंडलिनी मूल चीज है। कुंडलिनी जाग्रत होने पर साधक अनेक प्रकार की दिव्य शक्तियां प्राप्त कर लेता है। दिव्यास्त्र प्राप्त कर लेता है, साधना रूपी संग्राम को जीतने के लिए जिनकी जरूरत पड़ती है।

तो यह साधन-भजन ऐसी चीज है कि इस रास्ते में कुछ चीजों को हटाते जाते हैं, कुछ आती जाती हैं। साधना विजातीय तत्वों को हटाती है, सजातीय तत्वों को लाती है। यह फंसाने वाला संसार भी अपने मन के अन्दर है, और छुड़ाने वाली युक्तियां भी इसी के अन्दर हैं। यह सब अच्छे बुरे संकल्पों की चित्रशाला हमारे अपने ही अन्दर है। अब ये चित्र जो बन गए हैं, ये हटाए नहीं हटते। न मिटाए मिटते हैं। जबकि हैं सब झूठे -

‘शून्य भित्ति पर चित्र, रंग नहीं,

तन बिनु लिखा चितेरे।

धोए मिटै न मरै भीति

दुख पाइय यहि तन हेरे॥’

जो जो संकल्प बनते जाते हैं, उनके चित्र बनते जाते हैं। कल्पनाएं होती जाती हैं, दुनिया बनती जाती है। हम उसमें भटकते जाते हैं, भूलते जाते हैं। अपने स्वरूप से दूर होते जाते हैं। अपने ठिकाने से दूर चले जाते हैं। इन पदार्थों के साथ, इन चित्रों के साथ उड़ते चले जा रहे हैं। तो समझना चाहिए कि यह संसार कुछ है नहीं, मन के संकल्पों की झूठी संरचना है यह-

‘रविकर नीर बसै अति दारुण,

मकर रूप तेहि मांही।

बदन हीन सो ग्रसै चराचर,

पान करन जे जाहीं॥

जिसने भी इसको मान्यता दे दिया और इसे सही मान लिया, उसको इस झूठे जल में इस रविकर नीर में रहने वाला माया रूपी मगर खा डालता है। यह ऐसा रविकर नीर है-मृगतृष्णा, मृगमरीचिका-जो सूर्य की तपन के कारण पैदा होता है। नीर है नहीं, और नीर जैसा दिखाई पड़ने के कारण नीर मान लिया गया। जिसकी उसमें

दृढ़ता हो गई, वह मानो मारा गया। फिर वह बच नहीं सकता। इस तरह से यह संसार है। जो इस झूठे जाल में फंस गया, फिर बड़ी मुश्किल से छूट पाता है।

जैसे बर्फ गिरती है जब पहाड़ों पर, रुई की तरह मुलायम रहती है। जो (शैलानी) लोग घूमने जाते हैं वहां, तो उस मुलायम बर्फ को उठा-उठाकर एक दूसरे पर मारते हैं। बच्चे खेलते हैं। परन्तु अगर वही बर्फ साल छः महीने पड़ी रह जाती है, तो वज्र की तरह कठोर हो जाती है। पत्थर जैसी कड़ी हो जाती है। फिर वह कटाई नहीं कटती, इतनी कठोर हो जाती है। ठीक ऐसे ही, हम जो संकल्प कर रहे हैं क्षण प्रतिक्षण, ये जब स्थायित्व ले लेते हैं, तो इनके चित्र बनकर तैयार हो जाते हैं। चित्र में दृढ़ता से जम जाते हैं। ये संकल्प रूप में पहले तो मुलायम रहते हैं, और जब पुराने हो जाते हैं, तो दृढ़ हो जाते हैं। ज्यादा पुराने होने पर और ज्यादा कड़ाई ले लेते हैं। दृढ़ संस्कार बन जाते हैं। तो फिर ये हटाए नहीं हटते। जो वर्तमान में संकल्प उठते हैं, वह नये हैं, कोमल हैं अभी। तो अगर उन्हें जमने न दिया जाय, टिकने न पाएं मन के अन्दर। हटाते जायें इन्हें। इन पर बार-बार चिंतवन न किया जाय, तो बचत हो सकती है।

ये जो नए संकल्प उठते हैं इसकी प्रक्रिया ऐसी है, जैसे सूर्य का प्रकाश चिकनी सतह पर पड़ने पर रिफ्लेक्शन (परावर्तन) होता है। उसी प्रकार एक नया संकल्प, उस पुराने संस्कार रूपी बर्फ के ग्लेशियरों पर पड़कर रिफ्लेक्ट (परावर्तित) हो जाता है। इस प्रकार फिर एक नया संकल्प बन जाता है। ऐसे इन संस्कारों और संकल्पों के रिफ्लेक्शन पर रिफ्लेक्शन होते जाने से संसार बन जाता है। पदार्थ बन जाते हैं, शरीर बन जाता है, दुनिया बन जाती है।

परन्तु सबका मूल तो परमात्मा ही है। इसलिए इस जगत को भी मनीषियों ने उसी का रूप माना है।

सीय राम मय सब जग जानी।

वही निरवयव, सावयव बन जाता है। जैसे वायुमंडल में स्थित पानी की भाप, अत्यंत ठंडी में बर्फ बन जाती है। वैसे ही अत्यंत आसक्ति रूपी ठंडी के कारण यह परमात्मा रूपी पानी, संसार रूपी बर्फ के ढेले बन जाता है। अनेक रूप आकार ले लेता है। तो आदमी बर्फ के इन बाहरी रूप, रंग और आकारों में उलझा रहता है। उसमें पानी ही पानी है, परमात्मा रूपी पानी, यह देख पाने के लिए ज्ञान की गर्मी से, इस संसार रूपी बर्फ को गला देना पड़ेगा।

ऐसा यह मामला है। अगर समझ काम कर जाय तो व्यक्ति आत्मकल्याण का रास्ता पा जाय। आदमी आशक्ति के कारण इस दिखावटी संसार में मर मिट रहा है। पैदा हो जाता है, फिर मर जाता है। और पैदा होने-मरने में कोई दिक्कत नहीं है। आराम से पैदा हो जाते हैं, आराम से मर जाते हैं। आत्मा न पैदा होता है, न मरता है। और स्तम्भवत, ज्यों का त्यों खड़ा है। वह जो निर्लेप, महाआकाशवत आत्मा है, जिसको परमात्मा कहा जाता है, उसमें यह सृष्टि है नहीं। वहाँ-उस स्तर में, उस निर्लेप परमात्म तत्व में न सृष्टि है, न जीवत्व है, न ईश्वरत्व है। वह सदा निर्लेप एक रस है। यह सब संसार होते हुए भी, यह है नहीं। परमात्मा की गैर हाजिरी में यह क्रिया चालू होती है। उसी के तत्व जब उसको नहीं जानते, तब ऐसे बन जाते हैं, वैसे बन जाते हैं। फिर उसमें ईश्वर कोटि आ गई, जीव कोटि आ गई। और वह सुप्रीम कोटि है, परमात्मा। सबसे परे-निर्लेप, एकरस। वहां कुछ है नहीं, वह मूल है। मूल तत्व है।

यह सृष्टि, काल करके बाधित है। यह होती रहती है। बनती रहती है, बिगड़ती रहती है। विनाश को प्राप्त हो जाती है। यह सब प्रक्रियाएं सृष्टि की, परमात्मा के अन्दर होती रहती हैं, फिर भी वह अछूता रहता है। ऐसा वह निर्विकार तत्व है। उसी को पकड़ पाने के लिए, यह कानून बनाया है संतो ने, जिसे अध्यात्म विद्या कहते हैं। ये सब गीता, रामायण, शास्त्र, पुराण इसी के डाकूमेट (दस्तावेज) हैं। अगर यह अध्यात्म विद्या-जो ऋषि-मुनियों, संतो ने हम सबके लिए लिखकर छोड़ दिया है-इसे समझ लिया जाय, तो कल्याण का मार्ग मिल सकता है। तो समझ तब काम करती है इसमें, जब मन-बुद्धि शान्त और निर्मल हों। इसी के लिए यह सत्संग और भजन-ध्यान सब किया जाता है।

चले राम मुनि आयसु पाई। तुरतहि पंचवटी निअराई॥

दो.- गीथराज सैं भेंट भइ, बहु विधि प्रीति बढ़ाइ।

गोदावरी निकट प्रभु, रहे परन गृह छइ॥

रामचरित मानस को पढ़ना चाहिए, सुनना समझना चाहिए-आत्मकल्याण के लिए, न कि पैसा कमाने के लिए, न कि विद्वता दिखाने के लिए। आत्मकल्याण ही मानस के कहने-सुनने का ध्येय होना चाहिए। यद्यपि इसमें सामाजिक जीवन के लिए भी बड़े काम की बातें आई हैं, रीति-नीति की बातें आई हैं, लेकिन गोस्वामी जी का दृष्टिकोण आध्यात्मिक ही है। उन्होंने शुरु में ही लिखा है-

‘स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा’

और जहाँ समाप्त करते हैं, वहाँ भी यही बात लिखी है—स्वान्तस्तमःशान्तये। इसलिए यह तो निश्चित हो गया कि गोस्वामी जी ने मानस की रचना आत्मकल्याण के लिए किया है। अब भले ही लोग उसका दुरुपयोग भी कर रहे हैं। लेकिन मेरे विचार से, मानस का सही सदुपयोग इसमें है, कि इसे आत्म-कल्याण के लिए कहा-सुना जाय।

तो आत्मकल्याण के ध्येय से लेने पर हमें इसका आध्यात्मिक अर्थ लेना पड़ेगा। अध्यात्म जो विषय है, वह अपने अन्दर का है। तो हमें इस तरीके से लेना पड़ेगा, कि इस शरीर में ही सब मामला है। इसीमें सब देवता बैठे हैं। इसी में सब लोक लोकान्तर भरे पड़े हैं।

‘इंद्री द्वार इरोखा नाना।

तहं तहं सुर बैठे करि

थाना।।’

बाहर तो कहीं कोई देवता कभी किसी को मिला नहीं। इसी में ब्रह्मा, विष्णु, शंकर सब हैं। इसी शरीर में अयोध्या, चित्रकूट, जनकपुर, किष्किंधा, पंचवटी, लंका सब हैं। और इसी में परमात्मा भी है। इसी में राक्षस भी हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष ये सब राक्षस हैं इसमें। वास्तव में यह शरीर अयन है। आयना है मन का। हमारे अन्तर्जगत में जब जो भावना मुखर होती है, उसकी झलक इसमें आ जाती है। जैसे तुम जब हंसते हो खुश होते हो तो मुंह कैसा लगता है, और जब रोते हो तो कैसा दिखता है। तो यह अंतर, अन्दर के हिसाब से आता है। इसलिए मुख्य है, अन्दर की गतिविधि। अन्दर की स्थिति के अनुसार शरीर को वैसा कह दिया जाता है। जब योग की प्रक्रिया आ जाय। योग करने की क्षमता आ जाय, योग जाग्रत हो जाय, तब इस शरीर को जनकपुर कहते हैं। जब इसमें आसक्ति हो जाती है, अन्तःकरण में मोह-रावण का बोलबाला हो जाता है, तब इसे लंका कह सकते हैं। और जब इसके अपोजिट, हमारा मन, इन्द्रियों के सहित ईश्वर में लग जाय, यह दशरथ इसमें अध्यक्ष बन कर बैठ जाय, तब यह शरीर अवध कहा जाएगा। फिर चित्त का निरोध कर लिया, तो इसे चित्रकूट कहा जायगा। आगे चलकर जब कुंडलिनी जाग्रत हो जाती है, तब इसे पंचवटी कहते हैं। तो अब पहुँच गये पंचवटी, कुंभज ऋषि के आदेश से। वहीं पर बैठा है जटायू। जब राम वहाँ गये तो उन्होंने प्रणाम किया। तो उसने कहा राम! दशरथ मेरा साथी है। मिला है मुझे। तुम मुझे अपना पिता जैसा ही मानो। अब मैं तुम्हारी, यहां बैठे-बैठे सब देख-रेख करूंगा। ऐसा शब्द कहा उन्होंने।

इसका मतलब यह है कि जब साधक शब्द के विधान से बढ़ते-बढ़ते, हायर लेबल पर पहुंच जाता है, साधना के, तब जाकर वह मुकाम आता है। उसे मालूम पड़ जाता है कि ईर्ष्या-द्वेष ये सब यहीं हैं, त्रिसिरा, खर, दूषण वगैरह। कुंभज ऋषि ने यही कहा था, कि राम, यह सबसे उत्तम जगह है, तुम यहीं पर रहकर इनका सामना करो। मैं जानता हूँ जिसके लिए तुम यहां आये हो, अब वह कार्य शुरू होने वाला है। यहां तुम्हें महती (बड़ी-बड़ी) ताकतें जो हैं, वह सब सुलभ हो जायेंगी, और तुम यहां से स्टार्ट (प्रारम्भ) करो। यहां से चौकियां नजदीक हैं, सब राक्षसों की। बुरे विचार, भले विचार सब नजदीक हैं।

तो जटायु मुंह को कहते हैं। खर, ईर्ष्या को कहते हैं। द्वेष, दूषण को कहते हैं। तीनों गुणों में आसक्ति लग जाय, यह त्रिसिरा है। ये सब राक्षस यहां चौकियां लगाये बैठे हैं, चारों तरफ। अब जैसे, हम झाड़ू लगा रहे हों, दूसरा नहीं लगा रहा है। मन में आयेगा कि वह मजा मार रहा है। आ गयी ईर्ष्या, कहीं दूर नहीं जाना पड़ा। यहीं था यह खर। यहीं सब दुर्गुण पैदा हो जाते हैं। इनका चित्रण किया गया है।

यहां मुंह का नाम जटायु है। जटायु गिद्ध, गो नाम इंद्रिय का है। वाक् इंद्रिय को धारण करता है। वचनों से रक्षा करूंगा। यानी मुंह से रक्षा करता है। और किया उसने। बहुत किया, बहुत किया, लेकिन फेल (असफल) हो गया। नहीं कर पाया, मारा गया। साधक को जो वाणी मिलती है, चिन्ता न किया करो, खाने की कल्पना न किया करो, भगवान की कल्पना करो। भगवान में मन लगाओ। जो मिले वह ठीक है। हमें पैसा से मतलब नहीं है। धन में चित्त न फंसाओ, इन शब्दों से गीध की मदद मिलती है। साधक की रक्षा होती है। लेकिन मोह के प्रभाव में कहने का असर नहीं होता। रावण से मार खा जाता है, जटायु। साधक की क्षमता (शक्ति-सीता) को नहीं बचा पाया। मर गया। तो यह जो मुंह है गीध है। यह बार-बार कहता था, कि न इच्छा करो, न इच्छा करो। देखो फिर इच्छा किया। यही पहरेदार है, जटायु। ग वर्ण का प्रयोग शास्त्रों में गो नाम इंद्रिय के अर्थ में किया गया है। ध का मतलब धारण करना। इसलिए गीध का मतलब है, मुंह। मुंह वाक् इंद्रिय को धारण करता है। दशरथ का मित्र है। दशरथ तो एक राजा थे। मानव थे। मनुष्य की किसी गीध से मित्रता तो होती नहीं। तो यह सब अस्वाभाविक बातें जो आती हैं, बीच-बीच में, यह लोगों की समझ में नहीं आती हैं। असल में यह तालमेल बैठाया गया है। आध्यात्मिक तौर तरीके, सांसारिक तरीकों से अलग होते हैं। महात्माओं की शैली है, महात्मा लोग इन बातों को समझते हैं। जैसे मिलेट्री में कुछ संकेतात्मक शब्द बना लिए जाते हैं। डाट, डैश बना लिए जाते हैं, कि दुश्मन हमारी बात को न समझ

पावे,हमारे सैनिक ही समझें। इसी तरह महात्माओं की यह बातें,सब नहीं समझते। इसलिए गलत ढंग से बता देते हैं, व्यास वगैरह। साधना भी युद्ध ही तो है, संत-साधक इसके सेनानी हैं। इस मिलेद्री की सांकेतिक भाषा को वे ही समझते हैं।

गीध मुंह है, इंद्रिय है। इंद्रियों में चेतन का प्रतिबिम्ब दशरथ है। तो इस तरह से दोनों साथ-साथ हैं। साथी हैं, मित्र हैं। तो यह मुंह संरक्षण करता है - साधक का, वचनों के द्वारा।

तो जब साधना का एक स्तर पूरा हो गया, तो पंचवटी में निवास हो गया।

जब ते राम कीन्ह तहं वासा। सुखी भए मुनि बीती त्रासा।।

गिरि बन नदी ताल छबि छाए। दिन दिन प्रति अति होहिं सुहाए।।

जब अच्छे स्तर पर साधन-भजन होने लगता है,मन में शान्ति आती है। अच्छा लगने लगता है। साधक अन्दर ही अन्दर प्रसन्नता का अनुभव करने लगता है। यही है पंचवटी का सुन्दर-सुखद वातावरण। जब ज्ञान-राम,विवेक रूप लक्ष्मण और शक्ति-सीता कई कसौटियों से निखरकर साधक के अन्दर आ गए,तो वह अच्छा महसूस करता है। अन्दर के सारे अवयव खिल उठते हैं। उसी का चित्रण बाहर के सुन्दर वातावरण में किया गया है।

जैसे ही साधक कुछ राइज हुआ, कि परीक्षा शुरू हो जाती है। यह प्रकृति परीक्षा लेने लगती है। साधक की कसौटी होने लगती है। तो यह प्रकृति कहीं बाहर से नहीं आती। अपने ही अन्दर से यह कलाबाजी तैयार होती है। बाहर कथानक बनाकर समझाया जाता है। जैसे तुम लोगों ने कथानकों में सुना होगा,कि कोई ऋषि तपस्या करते थे। उसकी तपस्या से इन्द्र का सिंहासन हिलने लगा,तो फिर इन्द्र रम्भा,मेनका आदि अप्सराओं को भेजता था। कामदेव को भेजता था। तो, इन्द्र कहीं बाहर नहीं है। यह जो विषयोन्मुख इंद्रियों के साथ रसास्वाद लेने वाला मन है, यह इन्द्र है। साधक जब ईश्वर का भजन करने लगा,इंद्रियों का संयम करने लगा, मन को नाम में, ध्यान में लगाने लगा, तो यह जन्म-जन्म का विषय-लंपट मन रूपी इन्द्र, घबड़ा उठता है। सोचता है कि मैं विषयों के आनन्द से वंचित होजाऊंगा। मेरा यह स्वर्ग-विषयानन्द रूप स्वर्ग-हमेशा-हमेशा के लिए छूट जायगा। तो फिर,यह विषयी मन,जाल रच देता है। विषय के संकल्प लाएगा। कभी रूप की, कभी स्पर्श की,कभी स्वाद की कल्पनाएं करेगा। यही सब अप्सराएं हैं,जो तरह-तरह की कला दिखाकर साधक को भजन से विचलित करती हैं। अगर सही निष्ठा वाला,विवेकवान साधक है,तो मन की इस हरकत को समझकर, अपनी बचत कर लेगा। और नहीं तो ये सब

इंद्रियों के देवता, उस इन्द्र का सहयोग कर देंगे, साधक की हुलिया बिगाड़ देंगे। जानते हो-

‘आवत देखहि विषय बयारी।

ते हठि देहि कपाट उघारी।।’

तो यह सब कहानी अपने अन्दर की है, बाहर कथानक बना लिए जाते हैं। साधक को अपने अन्दर देखना चाहिए। मन की चालाकी से बचने का यही तरीका है, कि मन की गतिविधि को देखता रहे। और अपने लक्ष्य पर दृढ़ रहे। मन को निरंतर उसी लक्ष्य में लगाए रहे, उसे मौका ही न मिले बिल्कुल। यह मौके की ताक में ही रहता है। जरा सा मौका पाया, तो मानो ले गया गड्ढे में। फिर साधक की टंगड़ी ऊपर हो जायगी और मूंडी नीचे आ जायगी। तो यह भगवान की माया है, बड़ी दुस्तर है,

‘अतिशय प्रबल देव तब माया।

सो निस्तरइ तुम्हारिहि दाय।।’

इसलिए भगवान से प्रार्थना करते रहो, समर्पणभाव से। माया से भी हाथ जोड़ लो, और अपने काम में लगे रहो, दृढ़ निश्चय पूर्वक। अब हम हटेंगे नहीं, चाहे गर्दन चली जाय, चाहे हजार जनम लग जायं। जब साधक में ऐसी दृढ़ता आ जाती है, तो विरोधी बाधक तत्वों के ऊपर दबाव आ जाता है। जैसे अंगद ने जब पैर जमा दिया, तो राक्षसों की कांछ ढीली हो गई थी। और नहीं तो बड़े-बड़े फेल हो जाते हैं इसमें। विश्वामित्र जैसे तपस्वी, मेनका के पीछे-पीछे भागने लगे। बनावटी विश्वमोहनी को देखते ही नारद का सब ज्ञान भुला गया। तो यह प्रकृति जब नारी का रूप लेकर साधक के सामने आती है, उसकी परीक्षा लेने के लिए, तो विवेक से काम लेना पड़ता है। पंचवटी में सूपनखा के प्रसंग को ऐसी शैली से लेना चाहिए।

रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई। बोली बचन बहुत मुसकाई।।

तुम सम पुरुष न मो सम नारी। यह संयोग विधि रचा बिचारी।।

मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखेउं खोजि लोक तिहुं माहीं।।

ताते अब लगि रहिउं कुमारी। मन माना कछु तुमहिं निहारी।।

सूपनखा माया का रूप है। संसार में कंचन और कामिनी, ये दो रूप ऐसे हैं माया के, जिनका सबसे ज्यादा असर होता है आदमी के मन में। तीसरी चीज है कीर्ति। अपने को जनाने में आदमी की रुचि रहती है। अपनी प्रशंसा चाहता है। तो जैसे पुरुष के लिए स्त्री को बाधा माना गया है, वैसे ही अगर स्त्री भजन करे, तो

उसके लिए पुरुष बाधा है। अब यहां तो सूपनखा खुद ही राम-लक्ष्मण को देखकर परेशान है। शादी करना चाहती है उनसे। तो इसका मतलब यह नहीं है, कि सूपनखा के संकल्पों का इन पर असर नहीं होगा। किसी दूसरे के मन में विषय संबंधी संकल्प अगर तुम्हारे लिए उठते हैं, तो निश्चित रूप से तुम्हारे पास आते हैं। यदि तुम उनको हटा देने की क्षमता नहीं रखते, तो वे बाहरी संकल्प तुम्हें घसीट कर विषय में गिरा देंगे। इसलिए क्षमता होनी चाहिए, और विवेक होना चाहिए। वहाँ तो सीता-शक्ति भी है, विवेक रूप लक्षण भी है। इसलिए बच जाते हैं।

सीतहिं चितइ कही प्रभु बाता।

अहइ कुमार मोर लघु भाता॥

बताइये भला, राम ने कुंवारा बता दिया लक्ष्मण को। ऐसा नहीं है। यह साधक के अन्तर्जगत का चित्र है। बाहर से आने वाले बुरे संकल्प को अपने नालेज (ज्ञान) में लिया गया। उसमें क्षमता है, कि उससे विचलित न होकर, उसे अपने विवेक के हवाले कर दिया। और विवेक के द्वारा बेअसर कर दिया। मजाक बना दिया उसका। मतलब हुआ कि सूपनखा के नाक-कान काट लिए लक्ष्मण ने-

दो. - लछिमन अति लाघव सो, नाक कान बिनु कीन्ह।

ताके कर रावन कहुं, मनौ चुनौती दीन्ह॥

जब साधक सूक्ष्म साधना में प्रवेश कर जाता है, तब उसके अन्तःकरण में सजातीय और विजातीय दोनों समूह स्पष्ट होने लगते हैं। और फिर एक-एक करके, विजातीय तत्वों को समाप्त किया जाता है। यह अविद्या रूपी सूपनखा अब विजातीय समूह को जाग्रत करेगी। वे उभर कर सामने प्रत्यक्ष होते जाएंगे और नष्ट किये जाएंगे।

खर दूषण पहिं गइ बिलपाता। धिगधिगतव पौरुष बल भाता॥

तेहि पूछ सब कहेसि बुझाई। जातुधान सुनि सेन बनाई॥

थाए निशिचर निकर बरुथा। जनु समच्छ कज्जल गिरि जूया॥

वहां कहीं कोई गया आया नहीं। यह बीमारी जो जीव के साथ जन्म जन्मांतर से लगी है अविद्या नाम से, यही सूपनखा है। इसके ललकारने से ये सब दुर्गुण रूप राक्षस साधक के अन्दर जाग्रत हो जाते हैं। ईर्ष्या-द्वेष रूपी खर-दूषण मन के भीतर उठ खड़े होते हैं। तीनों गुणों की आसक्ति को त्रिसिरा कहते हैं। इनके पीछे हजारों प्रकार के दुष्कर्म और बुरे विचार ये सब चौदह हजार राक्षस, साधक के अन्तर्जगत में हल्ला बोल देते हैं। अब उसके पास ज्ञान है, विवेक है, भजन के द्वारा कमाई हुई

इनर्जी है। ध्यान-धनुष है, त्याग-तरकश है। कुछ अलौकिक युक्तियां भी हैं, दिव्यास्त्र जिन्हें कहा गया है। इस तरह से साधन सम्पन्न हो जाता है जब साधक, तो ये सब पराभूत हो जाते हैं राक्षस।

लै जानकिहिं जाहु गिरि कंदर। आवा निसिचर कटकु भयंकर॥

रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी। चले सहित श्री सरधनु पानी॥

देखि राम रिपु दल चलि आवा। विहंसि कठिन कोदंड चढ़ावा॥

चौदह हजार राक्षसों से राम अकेले लड़ेंगे। ऐसी लड़ाई बाहरी तो होती नहीं। तो यह अन्तर्जगत की बात है। अपने अन्दर के अनेक-अनेक दोषों को मिटाने के लिए साधक जब तनकर खड़ा हो जाता है। दृढ़ निश्चय करके साधना रूपी युद्ध में जुट जाता है, तो सफल हो जाता है। राम ने लक्ष्मण से कहा कि सीता को लेकर कंदरा में चले जाओ। इसका मतलब यह है कि जो ताकत या जो शक्ति हमने भजन करके प्राप्त की है, उसको हम प्रसुप्त कर दें। उसका प्रयोग न करें। और विवेक है, लक्ष्मण। तो अपनी विवेक-बुद्धि का इस्तेमाल इसमें करें, कि यह शक्ति हमारे खुद के इस्तेमाल करने की नहीं है। यह भगवान की शक्ति है, भगवान के उपयोग की चीज है। तो शक्ति खर्च होती है तब, जब हम इच्छा करके कोई काम करते हैं। फल की कामना करते हैं। इसलिए अनपेक्ष हो जायं। कर्तव्य हम करें, फल की इच्छा न करें। अपेक्षा करने से शक्ति खर्च होती है, भजन की कमाई निकल जाती है। ऐसा विवेक होना चाहिए। तो लक्ष्मण ने यह काम किया। विवेक होना चाहिए, कि यह राम (परमात्मा) का आदेश है, अपनी क्षमता को, भजन की कमाई को, सुरक्षित रखा जाय, गुप्त रखा जाय। अपनी साधनात्मक क्षमता को जाहिर न किया जाय। उसका उपयोग न किया जाय। भगवान को समर्पण कर दिया जाय। कि हे भगवान? मैं आपका हूँ। इन दुर्गुणों से मेरी रक्षा करिए। तो फिर स्वयं भगवान धनुष लेकर खड़े हो जाते हैं। फिर इन चौदह हजार राक्षसों को-दसों इंद्रियों सहित चारों अन्तःकरणों के मलों को-जलाकर भस्म कर देंगे।

तो साधक सर्वोत्तम वही माना जाता है, जो अपनी ताकत का इस्तेमाल न करे, उसे प्रसुप्त रखे। अपनी ताकत को भुलाए रहे। परमात्मा पर भरोसा रखे। हनुमान की तरह। हनुमान को अपनी ताकत की याद नहीं रहती थी। भुलाए रहते थे उसे। अपनी क्षमता को भुलाने का मतलब है, भगवान पर निर्भरता। जब भगवान के हाथों में बागडोर सौंप दी गई, तो विजय निश्चित है। साधना के क्षेत्र में यह बड़ी कामयाब युक्ति है।

तो इस प्रसंग का यह अर्थ आता है। भगवान का आदेश हो गया कि तुम लोग जाओ, लुक-छिप जाओ कन्दरा में। प्रसुप्त हो जाओ। अपना उपयोग न करो। न विवेक की जरूरत है, न बल की जरूरत है-मुझे सौंप दो। मुझ पर छोड़ दो। मैं देखता हूँ। यह जो शुद्ध अहं है, वह परमात्मा है। वह खड़ा हो जाता है, धनुष-वाण लेकर, और ये जितने ईर्ष्या, द्वेष आदि दुर्गुणों का दल-बल है, सबका विनाश कर देते हैं। यह उत्तम तरीका है। और अगर तुम भी अपना जोर मारोगे, राम का भी सहारा लोगे, अपनी भी बुद्धि लगाओगे, चालाकी करोगे, बेइमानी करोगे, इच्छा करोगे तो इसमें जीत नहीं सकोगे। इस रास्ते की बारीकियों में, पेचीदगियों में फंसकर हार जाओगे। फिर यह साधना की लड़ाई नहीं रह जायगी। संसारी लड़ाई बन जायगी। सांसारिक लड़ाई और साधना में इतना ही अन्तर है, कि वह अपने लिए, अपने बल से लड़ी जाती है, - साधना भगवान के लिए भगवान के भरोसे की जाती है। यही उपाय है, जीतने का।

दो.- राम राम कहि तन तजहिं, पावहिं पद निर्वाण।

करि उपाय रिपु मारे, छन महं कृपा निधान॥

हरषित बरषहिं सुमन सुर, बाजहिं गगन निसान।

अस्तुति करि करि सब चले, सोभित विविध विमान॥

लोग कहते हैं कि ये राक्षस कैसे निर्वाण पद पा गए ? ये तो भगवान के खिलाफ होते हैं। तो देखो परमात्मा में यह अच्छा-बुरा, सुख-दुख, शत्रु-मित्र कुछ नहीं है। वह निर्लेप अवस्था है। यह तो संसार की नियमावली है। दुनिया दो से बनी है। इसमें अच्छाई-बुराई रहेगी। परमात्मा द्वैत से परे है, अद्वैत है। जब साधक के अन्दर वह स्थिति बनती है, तो सब राममय हो जाता है। सब उसमें समाहित हो जाता है, जितना यह प्रपंच है। यह अवस्था, स्तुति के योग्य बन जाती है। आनन्दमय माहौल हो जाता है-अन्दर ही अन्दर। देवताओं के आने का मतलब है, कि अन्दर, चित्त के आकाश में सजातीय भावनाओं का उदय होता है, जब ये मन के दूषण समाप्त होते हैं। निर्मलता आती है मन में अच्छा लगता है। शान्ति मिलती है। यह देवताओं द्वारा खुशियाली मनाने का रूप है।

पंचवटी बसि श्री रघुनायक। करत चरित सुर मुनि सुखदायक॥

धुआं देखि खर दूषण केरा। जाइ सूपनखा रावण प्रेरा॥

बोली बचन क्रोध करि भारी। देस कोस कै सुरति बिसारी॥

करसि पान सोवसि दिनु राती। सुधि नहिं तव सिर पर आराती॥

जब साधक कुछ प्रगति कर जाता है, अच्छे स्तर की साधना पकड़ में आती है, तो उसकी अन्तर्दृष्टि खुल जाती है। अन्दर की बारीकियां पकड़ में आने लगती हैं। उसका त्याग, वैराग्य, समर्पण सब सही हो जाता है। मजबूती आ जाती है, अन्दर से भजन की सही पकड़ आ जाती है। लेकिन तो भी वह अभी पारंगत नहीं हो गया है। अभी तो बहुत आगे तक चलना है। अभी तो तीसरी, चौथा भूमिका को पकड़ पाया है। सात भूमिकाएं हैं।

तो जैसे-जैसे आगे की कक्षाओं में बढ़ेगा, उसी के स्तर की परीक्षा भी होती है। परीक्षा कठिन होती जाएगी। जितने फोर्स से भगवान की तरफ तुम बढ़ोगे, उतने ही फोर्स से माया भी खींचेगी। सूपनखा रावण को सचेत करती है। मोह को जगा देती है। मोह रावण है। माया के पक्ष का सबसे पावर फुल (ताकतवर) तत्व है यह मोह। इससे पार पाने में साधक के दांतों पसीना आ जाता है। बहुत कठिन है। उस बुराई के केन्द्र को जाग्रत कर दिया। भारी क्रोध करके बोलती है सूपनखा, कि तुम पड़े सो रहे हो, दुश्मन तुम्हारे सिर पर डंका बजा रहा है, और तुम सो रहे हो। ऐसा कहा उसने।

कह लंकेस कहसि निज बाता। केहि तव नासा कान निपाता।।

अवध नृपति दसरथ के जाए। पुंय सिंह बन खेलन आए।।

समुझि परी मोहि उन्ह कै करनी। रहित निसाचर करिहहिं धरनी।।

यहाँ क्लियर (स्पष्ट) कर दिया कि ये दोनों-राम और लक्ष्मण-धरती को निशाचरों से रहित कर देंगे। तो क्या इतनी ही धरती थी पंचवटी से लंका तक? धरती तो बहुत बड़ी है। तो ये सब मेटाफिजिक्स (अध्यात्म) की बातें हैं। अध्यात्म की बातें हैं। यह प्रकृति रूपी सूपनखा बोल रही है। यह नेचुरल सिस्टम (प्राकृतिक तरीका) ही है, स्वाभाविक बात है, कि जब साधक के अन्दर ज्ञान-विवेक, क्षमता पूर्वक काम करने लगते हैं, तो अविद्या के क्षेत्र में खलबली मच जाती है। आभास मिल जाता है, कि अब इस शरीरके अन्दर जितने भी दुर्गुण हैं, बच नहीं पाएंगे। ये दोनो भाई, अधर्म को नष्ट कर देंगे। इस तरह से यह मानस का दिग्दर्शन है।

सूपनखा बोल रही है, लेकिन गोस्वामी जी की भाषा बोल रही है। उनके मानस की भावनाओं को लेकर बोल रही है। यह भी ध्यान देने की बात है, कि कथानक के सभी पात्र, रचनाकार की मानसिक सृष्टि होते हैं। इसलिए इसमें जो भी बोलेगा, गोस्वामी जी की भाषा बोलेगा। राक्षस बोले, देवता बोले, राजा बोले-प्रजाबोले, बन्दर,

भालू, कौआ, गीध, नदी सब एक दूसरे की बात समझेंगे। सब एक दूसरे से मानवीय शैली में व्यवहार करेंगे। यह बड़ी रोचक बात है। संसार में तो ऐसा देखा नहीं जाता।

अब देखिए सूपनखा और रावण की बातचीत लंका में हो रही है-भाषा और शैली वही गोस्वामी जी की। तो क्या वहाँ पहले यह अवधी भाषा बोली जाती थी? पता नहीं पहले कौन भाषा थी? कहते हैं, संस्कृत थी। गौतमबुद्ध के समय में पाली भाषा बोली जाती थी। फिर अपभ्रंस होते-होते यह रूप बना होगा जो इसमें है। इधर बाद में मुगल पीरिएड (काल या समय) में उर्दू फारसी का बोल बाला हुआ, और इन सबकी खिचड़ी भाषा बन गई, जो आज हम-तुम लोग बोलते हैं-हिन्दी भाषा। तो यह भाषा-बोली तो रोज बदलती है। लोग कहावत बनाए हैं कि, 'कोस कोस में पानी बदले, चार कोस में बानी।' थोड़ी-थोड़ी दूर में भाषा बदल जाती है। लेकिन रामायण में सबकी एक जैसी भाषा है। जबकि उसी में लिखा है कि-खग जानै खग ही की भाषा। सही भी यही है।

तो हम यह कहना चाहते थे, कि यह मानस गोस्वामी जी के मानस (अन्तःकरण) से निकला है। उनके अन्तर्जगत की संरचना है, इसलिए सभी कथानक, सभी पात्र, अन्दर की प्रक्रिया और अन्दर के अवयवों के प्रतीक रूप में लिए गए हैं। इसलिए सब प्रसंगों में, सब संवादों में गोस्वामी जी के अन्तर्जगत की झलक है। गोस्वामी जी महात्मा थे, अध्यात्म साधना का पूरा सांचा-ढांचा उनके अन्दर स्पष्ट था। तो इस ग्रंथ में साधनात्मक बातों को कथानक शैली में उन्होंने लिखा है। इसलिए बाहरी ढंग से यह सब ताल मेल सही नहीं आता। इसकी एडजस्टिंग (समायोजन) संत-साधको को अपने अन्तःकरण में करना चाहिए। तब ये सब बातें-जो सही नहीं लगतीं, कि पहाड़ भी बोल रहा है, बन्दर, भालू और गीध, कौआ सब आदमी की तरह बात-व्यवहार कर रहे हैं-सही लगने लगेंगी। यह बहुत जरूरी है समझना। अगर नहीं समझा गया, तो लोग इस तरह से गलत धारणा बना लेते हैं। आपस में विवाद करते हैं। एक कहेगा ऐसा हो नहीं सकता जैसा लिखा है। दूसरा कहेगा, हम तो इसी को सही मानेंगे, जो इसमें लिखा है। यह झगड़ा खतम हो सकता है अगर असलियत पर गौर किया जाय। यथार्थ को स्वीकार किया जाय। और आध्यात्मिक तरीके को, इस सार्वभौमिक तरीके को मान लिया जाय।

दो.- लछिमन गए बनहिं जब, लेन मूल फल कंद।

जनक सुता सन बोले, विहंसि कृपा सुख वृंद॥

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नर लीला॥

तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौ निसाचर नासा॥

सीताहरण के कथानक में गोस्वामी जी ने सीता और राम के यथार्थ स्वरूप को बताने का यह तरीका बनाया है। भगवान की शक्ति का नाम सीता है। परमात्मा का जो मूल स्वरूप है, उसमें तो हलन-चलन कुछ है नहीं। उस निर्लेप निर्विकार स्वरूप में जो शक्ति निहित है, वह सीता है। वह शक्ति परमात्मा से अभिन्न होती है। वह शक्ति कभी च्युत होती नहीं। और जो बाहर देखने में आती है, वह लीलाधर जिसे लेकर समय-समय पर नर लीला करता है, वह अलग है। वह बनती-बिगड़ती रहती है। उसमें कमी आ सकती है, अपहरण हो सकता है, नर रूपधारी राम से उसका विछोह हो सकता है। जैसे राम का जो असली रूप है, वह तो ज्यों का त्यों है

‘शांत शुद्ध सम सहज प्रकाशा।’

वैसे ही सीता भी वहाँ उसी स्वरूप में एकाकार होकर रहती है। इसलिए राम और सीता को अलग नहीं किया जा सकता। इनमें परस्पर अभेद है, भेद नहीं है—

‘गिरा अरथ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।’

जैसे जल और तरंग अलग-अलग नहीं हैं, वैसे ही सीता और राम अभिन्न हैं। एक ही हैं। इसलिए राम के बिना सीता नहीं, सीता के बिना राम नहीं। बिना शक्ति के शक्तिमान नहीं, और बिना शक्तिमान के शक्ति नहीं। तो राम का नाम लिया जाय तो उसमें सीता भी आ गई। अथवा सीता कहा जाय तो उसमें राम मिला हुआ है। मिथिला की तरफ कोई राम का नाम नहीं लेता—किशोरी जी, किशोरी जी बोलते हैं, सब लोग। उधर ब्रज की तरफ चले जाओ, तो राधे राधे की धूम मची रहती है। तो ‘राधे’, इस नाम में कृष्ण समाया हुआ है। दोनों अभिन्न हैं। राधे के नाम में कृष्ण निहित है। यहाँ इस एरिया में लोग राम का नाम ज्यादा लेते हैं। इसका मतलब यह नहीं है, कि सीता की मुमानियत करते हैं। सीता के बिना राम होता नहीं। वह शक्ति है, वह शक्तिमान है। अभिन्न हैं दोनों।

तो जो सीता अग्नि में समाहित हो गई, वह वही परमात्मा की अव्यक्त मूल शक्ति है। और जिस क्षमता से यह नकली नर लीला भगवान करते हैं, जिस किसी काया रूपी कल्प में वह सीता वहाँ उनके साथ रहेगी। जो जहाँ की चीज है, वहाँ काम करेगी। लेकिन यह रहस्य जल्दी समझ में नहीं आता। इसमें लोगों के बुद्धि विवेक काम नहीं करते। लक्ष्मण भी नहीं जान पाए यह बात। तो यह सब कहानी साधक के अन्दर आती है। जो मूल क्षमता उसने प्राप्त की है, भजन के द्वारा उसे यूँ नहीं किया जाता। उसे रिजर्व (सुरक्षित) करते जाते हैं। छिपा कर रखते हैं, उस दिव्य

अलौकिक शक्ति को। और जो साधक की अपनी पुरुषार्थ शक्ति है,उसे साधना में लगाता है। पूरी ताकत झोंक देता है,भजन के काम में। इस लौकिक शक्ति रूपी नकली सीता को दांव में लगा देता है। भजन साधना के लिए उपयोग करता है इसका। यह गूढ़ रहस्य की बातें सबको समझ में नहीं आती हैं।

लछिमन हूँ यह मरमु न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना॥

दसमुख गयउ जहाँ मारीचा। नाइ माथ स्वारथ रत नीचा॥

मारीच के पास रावण जब गया तो वह वहाँ कुटिया में बैठे राम राम जप रहा था। तो यह सब बाहरका नाटक है। अन्तर्जगत में इसका रूप दूसरे ढंग का बनता है। मन को मारीच कहते हैं। मन के ऊपर दोनो तरह का असर आता रहता है। पहले इस मारीच को राम ने बिना फर का वाण मारा था-उसका असर अभी था उसमें। यह वाणी रूपी वाण, साधक के मन को प्रभावित कर देता है, तो मन ईश्वरोन्मुख होने लगता है। लेकिन स्थायित्व नहीं ले पाता। जहाँ मोह रूपी रावण आ गया,तो झट दूसरा रूप बन जाता है। मन के ऊपर उसका असर पड़ जाता है। क्योंकि मन में ईश्वरीय भावना बन गयी है,तो भी अभी माया-मोह के दायरे से निकल नहीं पाया है। तो थोड़ी देर तक उसने (मारीच ने) रावण को समझाया-बुझाया, और जब रावण ने डांटा, तो बस, सब ज्ञान भुला गया। ऐसे ही होता है। साधक के मन के ऊपर विजातीय तत्वों का असर आ जाता है। राम का रंग उतर गया, रावण का रंग चढ़ गया। चल दिया पीछे-पीछे। इस तरह साधक का मन-ही मारीच है। यह धोखा दे जाता है, और उसकी शक्ति का अपहरण करा लेता है। और जब फिर राम का बाण इसको लगेगा,तो फिर वही भावना ईश्वरीय भावना आ जायगी। ऐसे यह मन अन्दर ही अन्दर अदलता-बदलता रहता है।

तेहि बन निकट दसानन गयऊ। तब मारीच कपट मृग भयऊ॥

अति बिचित्र कछु बरनि न जाई। कनक देह मनि रचित बनाई॥

सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग अंग सुमनोहर बेषा॥

सुनुहु देव रघुवीर कृपाला। एहि मृग कर अति सुंदर छाला॥

पंचवटी यह शरीर, इसी के अन्दर यह चरित्र हो रहा है। मारीच कंचन मृग बन गया, बहुत सुन्दर। तो इसका मतलब है कि मन के अन्दर कंचन का असर हो गया। धन की इच्छा पैदा हो गई। पहले तो माया,कामिनी के रूप में आई थी सूपनखा बनकर। वहाँ विवेक रूपी लक्ष्मण काम कर गया तो बचत हो गई। अब कंचन-मृग में, इस माया मृग में लुभा गए। तो भगवान की प्रकृति के दो रूप हैं - एक चेतन

और दूसरी जड़। सूपनखा चेतन प्रकृति का रूप है और यह कंचन जड़ प्रकृति का रूप है। ये सब माया के बड़े-बड़े जाल हैं, जिनमें साधकों को यह फंसाती है। कंचन, कामिनी, कीर्ति। वित्तेष्णा, पुत्रेष्णा, लोकेष्णा - यह बुद्धि को खराब कर देती हैं।

‘सुत वित लोक ईषणा तीनी।

केहिकर मति इन्ह कृत न मलीनी।।’

तो सीता लुभा गई उस कंचन मृग पर। राम से हठ कर बैठी कि इसे मैं लूंगी। लक्ष्मण ने वहाँ आगाह भी किया कि अरे भैया! यह कोई राक्षसी माया है। सोने, चांदी के मृग तो कहीं होते नहीं। राम ने कहा - हां तुम ठीक कहते हो, लेकिन तुम्हारी भाभी की बात तो माननी ही पड़ेगी। तो भावी का मतलब भवितव्यता - फ्यूचर (भविष्य) में होने वाली घटना। वह तो होकर ही रहेगी। चल दिए उस कंचन मृग के पीछे-पीछे।

तो यह साधक के अन्दर, मन की स्थितियों का चित्रण है। जो इन कथानकों के रूप में लिखा गया है। उस असली बात को ले लेना चाहिए। वह अपने मतलब की चीज है। और यह जो बाहरी चरित्र है, यह भगवान की बनावटी नर लीला है। इसके चक्कर में पड़ोगे तो सती की तरह, गरुड़ की तरह मन में शंका खड़ी हो जायगी। भ्रम में पड़ जाओगे।

प्रभुहिं बिलोकि चला मृग भाजी। धाए रामसरसन साजी।।

निगम नेति सिव ध्यान न पावा। माया मृग पाछे सो धावा।।

कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई। कबहुक प्रगटइ कबहुँ छपाई।।

परमात्मा के सही स्वरूप को समझ लेने पर फिर शंका-संदेह की गुंजाइस नहीं रहती। उस परमात्मा में, उस राम में, जो अनादि है, एकरस व्यापक है, शुद्ध, बुद्ध, अजन्मा, अचिन्त्य, अरूप, अलख, अविनाशी है, उसमें दृढ़-निश्चय वाली बुद्धि जब हो जाती है, जब वहाँ मूल से ले लिया जायगा, तब मामला क्लियर (स्पष्ट) रहेगा। और ये जो भगवान बीच-बीच में तैयार हो जाते हैं और अपनी कला दिखा देते हैं, और समाज उनके प्रभाव में आ जाता है, और प्रभाव डालकर पुरानी भावना को दबाकर, नई भावना को आगे निकाल देता है-यह उसी परमात्मा की कलाएं हैं। समय-समय में इस समाज में ऐसा होता रहता है। लेकिन इसमें भेद नहीं करना चाहिए। यह वही अनादि परमात्मा है। वह अनेक रूपों में, अनेक भक्तों को अपनी लीला दिखाने के लिए आता रहता है। चरित्र करता है। ऐसा ज्ञान ठीक है। भगवान

जब अवतरित होता है जिस किसी काया रूपी कल्प में, तो हमेशा अपनी माया के सहित आता है।

“आदि सृष्टि जेहि जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया॥”

माया के बिना नहीं रह सकते भगवान। भगवान से अभिन्न रहती है, भगवान की माया। वह उस शक्तिमान की शक्ति है। वही सब कुछ करती है, भगवान कुछ नहीं करता। तो माया का मतलब है कला। कला का विस्तार करते हैं। सद्गुणों का विस्तार करते हैं तब होते हैं भगवान। तो वह मूल परमात्मा तो अनंत कला वाला है और जो अवतार हैं - इनमें अलग-अलग कला का विस्तार होता है। कल्पभेद से काया भेद से, हाँ मूल स्रोत वह एक ही है। कहते हैं राम बारह कला के अवतार थे, कृष्ण, सोलह कला के अवतार थे। नारद, परशुराम, वामन, व्यास इनमें कुछ कम कलाएं बताई जाती हैं। तो इस तरह से भगवान जिन्हें मानते हैं, अवतार कहते हैं जिन महापुरुषों को उनमें कला के अनुसार कैटेगरी बन गई। इसका मतलब हुआ कि इस मानव शरीर के अन्दर ऐसी नियमावली बनाकर रख दी गई है कि ये दिव्य कलाएं किसी युक्ति उपाय से बढ़ाई जा सकती हैं। योग क्रिया से ये कलाएं बढ़ाई जा सकती हैं। और जिस व्यक्ति में सामान्य आदमी से अधिक कलाएं होंगी, स्वाभाविक है कि वह अलौकिक मान लिया जायगा। भगवान मान लिया जाता है। अवतार कह दिया जाता है। समाज में देखते हो कि हर आदमी में कम ज्यादा क्षमताएं-योग्यताएं होती हैं - उसी के अनुसार मान्यता भी रहती है हर एक की अलग-अलग। तो हमारे ऋषियों-मुनियों ने आदमी के अन्दर कला-विस्तार की युक्तियां निकालीं और इसमें बड़ी खोजबीन हुई। और इस अनुसंधान में सफलता मिली उन लोगों को। गुरु शिष्य की परम्परा से यह विद्या आज तक चली आ रही है। इस तरह से हमारे यहाँ महापुरुषों की परम्परा चली आ रही है। इन्हें भगवान कहा जाता है, अवतार कहा जाता है, क्योंकि उनमें सामान्य आदमी से ज्यादा कलाओं का विस्तार हुआ है। दिव्य गुणों का विस्तार हुआ है, अलौकिक क्षमताएं हैं उसके पास - इसलिए वह दिव्य पुरुष भगवान कह दिया जाता है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, चैतन्य सब जो भगवान कहे गए, इसी समाज के बीच में रहे। जैसे सब पैदा होते हैं माता-पिता से, वैसे ही पैदा हुए, और पूर्व संस्कारों के प्रभाव से, अपने तप-त्याग और पुरुषार्थ से, दिव्य शक्तियों-कलाओं से सम्पन्न होकर भगवान कहलाए। अवतार माने गए। बहुत से लोग जो उनको नहीं समझ पाए, नहीं मानते। शिशुपाल, दुर्योधन बगैरह कृष्ण को नहीं मानते थे भगवान। राम को भी बहुतों ने नहीं माना - तो यह मान्यता की बात तो अलग है। तो यह जो बीमारी घुसी है आदमी के दिमाग में कि

भगवान कोई ऐसा है जो कहीं से आकर यहां प्रगट हो जाता है आलौकिक तरीके से, उसे निकल जाना चाहिए। मनुष्य में दिव्यता आती है और इसका स्रोत वही एक है। इसलिए जगह-जगह गोस्वामी जी लिख देते हैं-

‘राम सो परमात्मा भवानी।’

अथवा

‘रघुकुल मनि ममस्वामि सोइ,’

तो अगर परमात्मा के उस मूल स्वरूप को अलग छोड़ दिया गया, फिर बीच में नया भगवान खड़ा किया गया, तो सही नहीं माना जायगा। भेद पैदा हो जायगा। शंका खड़ी हो जायगी कि कौन राम परमात्मा माना जाय। दशरथ का लड़का राम परमात्मा है या कि वह राम जो सर्वत्र रम रहा है, अनादि, अजन्मा, एकरस और काल अबाधित है, सदैव है। जब से सृष्टि हुई है, और उसके पहले से जो परमात्मा है, जो राम है-वह सही है, अथवा यह राम, जो अयोध्या में पैदा हुआ- यह सही है। किसको सही मानें ? इस तरह से सही जानकारी के अभाव में, साधक पचड़े में फंस जाता है। सही ज्ञान के बिना इससे निकलना असंभव है। गोस्वामी जी ने अपनी इस रामायण में इस भेद को हटाकर, परमात्मा के स्वरूप को क्लियर करने का भरपूर प्रयास किया है। लेकिन लोगों की समझ काम नहीं करती इसमें। क्यों नहीं समझ पाते, क्योंकि अपने हठ को पकड़े हैं। पूर्वाग्रह से ग्रस्त हैं, इसलिए।

समझना चाहिए कि रामावतार के पहले तो राम नाम से भगवान कोई जानता नहीं था। पहले तो ओम्, ब्रह्म आदि नामों से जानते थे लोग। कुछ दिव्य कलाओं के साथ जब नृसिंह बना तो नृसिंह कहलाया। राम के रूप में आया तो लोग राम राम जपने लगे। कृष्ण का अवतार हुआ तो कृष्ण-कृष्ण जपने लगे। तो जब-जब वह अदृश्य परमात्म-शक्ति अपनी कला दिखाती है, तो वही कला भगवान बन जाती है। किसी देश विशेष में, काल विशेष में, प्रभाव दिखाकर अपने मूल स्वरूप में स्थिर रहती है। उस अच्युत को पहिचानो।

यहाँ कहते हैं कि, ‘निगम नेति शिव ध्यान न पावा। माया मृग पाछे सो धावा।।’ बार-बार यह लिख देते हैं कि शंकर जी के ध्यान में जो नहीं आते। जिनको शंकर जी ध्यान में ले नहीं पाते। प्रयत्न करके भी नहीं पकड़ पाते। उधर शंकर जी के हृदय में राम सदा निवास करते हैं। शंकर मानस राज मराला-ऐसा कहते हैं। यह कैसी उल्टी-पुल्टी बातें हैं ? लोग इसमें तर्क करने लगते हैं। अगर आध्यात्मिक अर्थ लिया जाय तो समाधान मिल जायगा। संत को शंकर कहते हैं। तो भगवान के उस

अव्यक्त स्वरूप को, जिसे वेद नेति-नति कहते हैं, संतजन ध्यान में जल्दी ले नहीं पाते। ऐसा मतलब है यहाँ। परमात्मा की जो खूबियाँ वर्णन की जाती हैं। उनके आधार पर उसे समझ पाने में बुद्धि असमर्थ हो जाती है। और यह भी है, कि संत साधक हमेशा भगवान का स्मरण, चिन्तन-भजन करते रहते हैं। मन में भगवान को लिए रहते हैं-जैसा जिससे बन पाता है। तो इस तरह से दोनों बातें सही आ गईं। ऐसी शैली से इसको समझना चाहिए। शंकर और ब्रह्मा और विष्णु सब अपने में ही हैं, इसी शरीर के अन्दर। स्थूल शरीर में अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब शंकर है, सूक्ष्म में अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब ब्रह्मा है। और बाहर कहीं इनके लोक नहीं बने हैं। ये सब अलौकिक क्षेत्र की बातें हैं। तो बाहर से मुँह फेर कर अपने अन्दर देखना पड़ेगा। इसके बिना कुछ हासिल नहीं होगा।

प्रगट्ट दुरत करत छल भूरी। यहि विधि प्रभुहिं गयउ लै दूरी॥

मन है मारीच। माया मृग बन गया। मतलब मन माया के आधीन हो गया। कंचन-मृग बन गया। मन में कंचन की या धन की कामना आ गई। पैसे का प्रलोभन आ गया। धन की लालसा से मन में अनेक प्रकार से संकल्प आने लगे कि धन मिल जाता तो यह करते, वह करते दान करते, पुण्य करते। यह काम हो जाता, ऐशो आराम करते। इस तरह के चिन्तन आते हैं। कभी रुक जाते हैं। फिर पैसे की बात आती है। फिर छूटती है। यह है उसका प्रकट होना और छिप जाना। जब साधक के मन में इस तरह से रह-रहकर पैसे का चिन्तन होने लगता है, तो भजन छूटता जाता है। पैसे में मन फंसता जाता है। ऐसे साधना छूट गयी, भजन से दूर चला गया मन। बार-बार पैसे को पकड़ता जा रहा है। धीरे धीरे यह स्थिति बनती है, कि पूरी तरह से धन के लोभ-पाश में बंध जाता है। और अगर न बंधे, तो भगवान का ही रूप है। लिखा है-

‘लोभ पास जेहि गर न बंधाया। सो नर तुम समान रघुराया॥’

तो साधक के अन्दर अगर कंचन विषयक या कामिनी विषयक अथवा और किसी संसारी विषय की इच्छा जाग जाती है, तो वह इच्छा उसे उसके ठौर ठिकाने से बहुत दूर ले जाती है। भजन से हटकर विषय के पीछे भागता जाता है। वहाँ पहुँच गया जहाँ वही वही है। वहाँ भगवान का, शान्ति का, विवेक का अता-पता नहीं रह जाता। सत्य से असत्य की तरफ ले गया यह छल करता है। इससे भी बड़ा कोई छल या धोखा है क्या, कि भगवान से हटाकर माया में ले गया। भजन से हटाकर विषय में लगा दिया ?

तो जब मन असत् पदार्थों की तरफ, विषय की तरफ आकर्षित होता है, तो भगवान दूर छूट जाता है। अगर भगवान सुन्दर लगते, तो विषय दूर छूट जाते, और भगवान समीप रहते। गोस्वामी जी कहते हैं -

जौ मोहिं राम लागते मीठे।

तौ नवरस षट रस रस अन रस हवै जाते सब सीठे॥

फिर भगवान के अतिरिक्त कुछ अच्छा नहीं लगता। अब आकर्षण तो हो गया है कंचन में। यह गलत हो गया। झूठी चीज को सत्य मान बैठे। रविकर नीर जो मृगमरीचिका है, उसे सही समझ लिया, तो फिर इसमें रहने वाला माया-मगर हमें खा ही डालेगा। बच नहीं सकते। मन का प्रलोभन ही फंसा देता है।

जैसे मछली फंसाने वाला बंसी के कांटा में चारा लगाकर जलाशय में कांटा फेंकते हैं। मछलियां उस चारे के आस-पास घूमती हैं, घूम घूमकर चली जाती हैं। उन मछलियों के मुंह में पानी आता है, चारा को देखकर। लेकिन वे खतरे को भी समझती हैं। इसलिए घूम घूमकर चली जाती हैं। अगर कोई मछली लोभवश चारा में मुंह मारती है, तो फट से फंस जाती है। तो यह कंचन-कामिनी बंशी है। माया इस बंशी में, इस मनरूपी मछली को फंसा लेती है। 'बनसी सम कह त्रिया प्रवीना।' तो अगर यह मन रूपी मछली, इस बंशी के चारे में मुंह न मारे तो क्यों फंसे इसमें ?

अब देखो, गोस्वामी जी ने एक और बंशी का संकेत विनय में दिया है-

“विषय वारि मन मीन भिन्न नहिं होत कबहुं पल एक।

ताते सहौ विपति अति दारुन, जनमत जोनि अनेक॥

कृपा डोरि बंशी पद अंकुश, परम प्रेम मृदु चारो।

यहि विधि वेधि हरौ मेरो दुख, कौतुकनाथ तिहारो॥”

अनुराग युक्त होकर इष्ट के चरणों में मन को लगा दिया जाय, बस। अगर इस बंशी में यह मन रूपी मछली फंस जाय, और भूलकर भी उस बंशी की तरफ न जाय, तो काम बन जाय। तो भाई, अपनी अपनी बंशी में साधकों के मन रूपी मछली को फंसाने का खेल, भगवान और भगवान की माया दोनों खेलते रहते हैं। अब यह मछलियों का संयोग संस्कार कहो या रुचि कहो, कि वह किस बंशी में फंसती है।

तब तकि राम कठिन सर मारा। धरनि परेउ करि घोर पुकारा॥

लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा । पाछें सुमिरेसि मन महुं रामा॥

प्राण तजत प्रगटेसि निज देहा। सुमिरेसि राम समेत सनेहा॥

अन्तर प्रेम तासु पहिचाना । मुनि दुर्लभ गति दीन्ह सुजाना॥

दो.- विपुल सुमन सुर बरसहिं, गावहिं प्रभु गुन गाय।

निज पद दीन्ह असुर कहूँ, दीन बंधु रघुनाथ॥

मारीच को भगवान ने अपना पद दे दिया। इसका तो यही मतलब हुआ कि भगवान हट गए और उस अपनी कुर्सी पर मारीच को बैठा दिया, अब वही भगवान के पद का निर्वहन करेगा। यही अर्थ है न इसका? लेकिन ऐसा नहीं है। इसका मतलब होता है कि भगवान ने उसे अपने में लीन कर लिया। क्योंकि वह भगवान में स्पर्श हो गया। जैसे पारस के स्पर्श से लोहा, सोना हो जाता है। कैसा भी लोहा हो, कैसे भी संपर्क में आ जाय, सोना ही बनेगा।

‘इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परो।

पारस गुन अवगुन नहिं देखत, कंचन करत खरो॥’

इसलिए चाहे बुरा हो, चाहे भला हो। भगवान के हाथ से चाहे आशीर्वाद मिले, चाहे दण्ड मिले-वह तो उनके क्षेत्र में आ गया, इसलिए उसका कल्याण हुआ। मन के अन्दर जो माया का जाल फैलाने वाली यह कंचन नाम की बीमारी आई थी-खतम हो गई। तो जब साधक का कल्याण हो गया, तो उसके अन्दर जो-जो भले-बुरे थे, सबका उद्धार हो गया। ऐसे इसे समझना चाहिए।

लक्ष्मण का नाम लेकर चिल्लाया जब मारीच, तो सीता ने सोचा कि राम संकट में हैं। इस तरह से सीता ने हठ करके लक्ष्मण को उधर भेज दिया। जहाँ लक्ष्मण हटा, कि रावण को मौका मिल गया। विवेक है लक्ष्मण। विवेक चला जायगा, तो सुरक्षा कौन करेगा ?

सून बीच दसकंधर देखा। आवा निकट जती के वेषा॥

रावण संन्यासी के वेष में पहुँच गया, और छल-बल से सीता को रथ में बैठाकर ले गया। तो मन के अन्दर खराबी आती है, मौका देखकर। साधक के अन्दर जब तक भजन-ध्यान, नाम-रूप, भगवान का रहेगा, ज्ञान-विवेक सजग रहेंगे, तब तक विजातीय तत्वों का प्रवेश नहीं होता। आएंगे भी तो थोड़ा दूर से ही प्रलोभित करेंगे। या फिर पराभूत होकर लौट जाएंगे। लेकिन जब ज्ञान रूप राम भाग गए, माया मृग के पीछे-पीछे। विवेक स्वरूप लक्ष्मण भी चले गए, तो अब सूना हो गया मैदान। जिसके अन्तःकरण में ज्ञान-विवेक न रहेंगे, वहाँ यह मोह रूपी रावण प्रवेश कर जाता

है। और साधक की क्षमता रूपी सीता को हर लेता है। फिर रोते रहो - हासीते! हासीते!!

तो यह है कलाबाजी मोह की। मोह-रूपी रावण है और यह शरीर पंचवटी है। मोह का आवेश जब आ जाता है, तो सब कला करने की याद आ जाती है। झूठ बोलने में भी लज्जा नहीं आएगी। साधु का वेष धारण करने में भी संकोच नहीं होगा। आडम्बर करने में शर्म नहीं लगेगी। फिर सब प्लानिंग बन जाती है। इस प्रकार सीता का अपहरण होता है। और यहाँ जो बाहरी रूप में यह कथानक दिखाया गया है, ऐसे तो अनेक ढंग से हमेशा अपहरण की घटनाएं समाज में होती रहती हैं। देखते हो समाचारों में। तो यह दुनिया इसी तरह से चली है, चलती रहेगी। इसे देखते रहोगे तो अनेक जन्म बीत जाएंगे और इसका अंत नहीं पाओगे। इसलिए जिसकी रुचि आत्म कल्याण में है, उन्हें अपने अन्दर देखना पड़ेगा। जैसे बाहर इस स्थूल जगत में घटनाएं होती हैं, वैसे ही सूक्ष्म जगत में या अन्तर्जगत में भी घटनाएं होती हैं। अपने अन्दर की गतिविधियों को देखना समझना चाहिए।

साधक को चाहिए कि यदि भजन करे तो कंचन और कामिनी से, दूर से ही हाथ जोड़ ले। माई-दाई दिखाई पड़े तो मन ही मन उन्हें प्रणाम कर ले। यह माया का साक्षात स्वरूप है नारी-नारि विष्णु माया प्रगट। माया, भगवान को भी आच्छादित कर लेती है-

‘मायाछन्न न देखिए जैसे निर्गुन ब्रह्म।’

माया को कोई जबरदस्ती नहीं जीत सकता। माया उस परमात्मा के समकक्ष है। इसलिए उसको नमन करना चाहिए। इस नीति से साधकों को रहना चाहिए। माई-दाइयों को नमन करना चाहिए। माया-मोह से दूर रहना चाहिए। अगर माया-मोह के जाल में फंसे, तो गए काम से। फिर उस खोई हुई अपनी शक्ति-सीता को, पुनः पाने के लिए क्या-क्या करना पड़ता है-देख लो रामायण में। पहले तो रोते-राते मर जाओगे।

हा गुनस्त्रानि जानकी सीता। रूप शील व्रत नेम पुनीता॥

लछिमन समुझाए बहुभांती। पूछत चले लता तरु पाती॥

जब पूंजी चली गई, तो अब रोने के अलावा रह क्या गया? लेकिन उसके लिए छटपटाहट होगी, तभी उपाय होगा। तो अब यहीं से शुरू हो गया खोजने का काम। और एक-एक करके सूत्र मिलते जाएंगे। जैसे ही चले, कि आगे गीध मिल गया, जटायु। उसने बताया कि रावण ने सीता का हरण किया है। यह पहरेदार बैठा था

वहाँ। जटायु मुंह को कहते हैं। शरीर रूपी पंचवटी में रहता है। मुंह में दाढ़ी-मूँछ, ये जटाएं होती हैं। इसलिए इसको जटायु कहा गया है। यह मुंह रोज कहता था कि साधु का काम भजन करना है, माया की तरफ नहीं देखना चाहिए। साधक को धन की कामना नहीं करनी चाहिए। भगवान में मन लगाना चाहिए। लेकिन मुंह का कहना नहीं माना गया। मोह के प्रभाव से इन कथनों की उपेक्षा हो जाती है। उसके पंख काट दिया रावण ने। मृतप्राय हो गया। तो इसका मतलब यह होता है, कि गुरुमुख से या शास्त्र वाक्यों से जो आदेश-उपदेश साधक को मिलते रहते हैं, यदि उनकी अवमानना, मोहवश कर दी गई तो निश्चित ही साधक की हानि होगी।

जब ठेकर लगती है, तो गलती का एहसास होता है। जब गलती मान ली गई और उसके लिए क्षमा याचना कर ली गई, तो साधक के हित में बहुत अच्छा रहता है। तो गीध की यथोचित क्रिया, अर्थात् अन्तिम संस्कार की जो क्रिया राम के द्वारा की गई, वह इसी क्षमा-याचना का रूप है। इस तरह से साधक के अन्दर की गति विधियों को लेकर, मानसिक विचारों को प्रतीक रूपों में गढ़कर, सुन्दर कहानी बना दिया है गोस्वामी जी ने। और आज लोग उसे समझ नहीं पा रहे हैं।

आवत पंथ कबंध निपाता। तेहि सब कही साप कै बाता।।

आगे बढ़े तो कबंध राक्षस मिल गया। कबंध का मतलब कमर के नीचे रहने वाला खराब कर्मों का केन्द्र। केकड़े जैसे आकार का दिखाया जाता है यह। राम-लक्ष्मण दोनों को पकड़ कर खाने को हाथ फैलाया उसने, तो लक्ष्मण ने उसे मार दिया। यह कबंध, अनेक जन्मों के खराब कर्मों का केन्द्र है, पापों का हेड क्वार्टर (मुख्यालय)। तो कबंध के मरने का मतलब है कि पापों का बड़ा भारी जखीरा नष्ट हो गया। जब ऐसा हो गया, तो पवित्र बुद्धि जगी। अभी तक यही पाप समूह साधक के लिए विनाश का हेतु बना हुआ था। वही खराब संस्कार उसे धन की तरफ, विषय की तरफ खींच कर ले जाते थे। अन्दर से प्रेशर (दबाव) देता था, गलत काम करा देता था। पुण्य कर्मों का संचय होगा तो भजन में प्रगति होगी। पाप कर्मों का संचित बाधा डालेगा। जब पाप कर्मों का संचित समाप्त हो गया, तो पवित्र बुद्धि जाग्रत होती है, और शुभ विचार आते हैं। शुभ कर्मों में प्रवृत्ति होती है। क्षमा, संतोष आदि अच्छे भाव आते हैं। मन में आएगा कि हमें किसी चीज की जरूरत नहीं है, अब अनपेक्ष रूप से भजन करेंगे। इच्छा रहित रहेंगे। ऐसे विचार साधन में सहयोगी होते हैं।

ताहि देइ गति राम उदारा। शबरी के आश्रम पगु धारा।।

संतोष ही शबरी है। साधक को धन के प्रलोभन से जो ठोकर लगी। उस गलती का एहसास हुआ। खराब संस्कारों को काट लिया। बुद्धि निर्मल हुई, तो अब संतोष मिल गया। मन के अन्दर की इस स्थिति को संतुष्ट अवस्था को शबरी के आश्रम पहुंचना कहा जाता है। इस स्थिति में साधक को विशेष आनंद का अनुभव होता है। मन में मस्ती आती है, यही मतंग ऋषि का दर्शन होना है। ऐसी स्थिति में साधक को अपने ही अन्दर से मूल्यवान ज्ञान के सूत्र मिलने लगते हैं। शबरी के साथ सत्संग में बड़ी अच्छी अच्छी बातें राम ने बताई हैं वहाँ।

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउं एक भगति कर नाता।।

जाति पांति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई।।

भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल वारिद देखिय जैसा।।

ये जो सूत्र यहाँ आए हैं, ये सार्वभौमिक सिद्धान्त के सूत्र हैं। भगवान के क्षेत्र में संसार की नियमावली नहीं लागू होती। ये सब जाति, पांति, धर्म, संप्रदाय, धनी-गरीब, ऊंच-नीच ये सब समाज के लिए हैं। साधन-भजन में भगवान की भक्ति के लिए, इन बातों का कोई महत्व नहीं है। वहाँ तो हृदय का अनुराग ही मुख्य बात है। ऐसे ही नवधा भक्ति और कई सूत्र बड़े अच्छे आए हैं।

मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा।।

कितनी अच्छी बात कही गई है इसमें। भगवान को मानने वाले लोग क्या-क्या चाहते हैं भगवान से। लेकिन यहाँ बता रहे हैं- कि भगवान के दर्शन का अर्थ है कि जीव को उसके सहज स्वरूप में स्थिति मिल जाय। जीवात्मा जब अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है, तो इसी का मतलब होता है भगवान से भेंट हो जाना। अनेक मल, विक्षेप, आवरण जो उसे क्लियर नहीं होने देते, इन्हें हटाना पड़ता है। और भी कुछ युक्तियों को लेकर जब चले। भजन-साधन का सांगोपांग कोर्स (पाठ्यक्रम) पूरा करे, सद्गुरुओं का आश्रय लिया जाय, और मेहनत की जाय तो क्या नहीं हो सकता? सब हो सकता है। यही तो वह काम है, जो मानव के लिए विशेषरूप से निर्धारित किया गया है, कि हम अपने स्वरूप को प्राप्त हो जायें। दूसरी किसी योनि में यह काम हो नहीं सकता। इसलिए कहा गया है कि नर तन सम नहिं कउनिय देही।' यह मानव तन बड़ी दुर्लभ चीज है।

चले राम त्यागा बन सोऊ। अतुलित बल नर केहरि दोऊ।।

विखी इव प्रभु करत विषादा। कहत कथा अनेक संवादा।।

सीता के वियोग में राम की हालत वैसी ही है, जैसे एक हार खाए साधक की होती है। जो साधक साधना की मंजिल को पाने के लिए आगे बढ़ता जा रहा है, और माया की कलाबाजी से धोखा खा गया। अपनी गलती से कहो या अपनी ही रुचि से मात खा गया। अपनी क्षमता से हाथ धो बैठा। तब उसे अन्दर ही अन्दर अपनी उन गलतियों का आभास होता है। वे बातें उसे कचोटती हैं। विचारों में छान जाती हैं। बाहर के दृश्यों में भी उन मानसिक स्थितियों का, उन विचारों का आरोपण होने लगता है। हाथी और हथिनियों को साथ देखकर राम सिखावन ले रहे हैं, कि सीता को छोड़कर उस मृग के पीछे भागना मेरी भूल थी। मृगों को देखकर उनके मन में आ रहा है, कि मानो ये मुझ पर व्यंग्य कर रहे हैं। कंचन मृग के पीछे भागने की भूल को इस तरह से स्वीकार कर रहे हैं। तो यही सब तो होता है। हर एक के अन्दर होता है। ऐसी फीलिंग (अनुभूति या एहसास) होती है। और इससे लाभ यह होता है कि आगे के लिए सतर्कता बनती है, और फिर से अपने सही रास्ते को पकड़ लेता है।

कामिन्ह कै दीनता देखाई। धीरन्ह के मन विरति दृढ़ाई॥

अब अगर बाहर से इसे लेंगे, तो कामी अलग हो गए और धीर अलग हो गए। जबकि चरित्र वही एक हैं। तो यह दो तरह के लोग अलग-अलग से इन्हें लेंगे, यह बाहरी ढंग है। वास्तव में तो ये दोनों चीजें एक ही साधक के अन्दर आती हैं। कामनाएं भी मन में आती हैं, और उसी मन में विषयों से विरत रहने का विचार भी आता है। तो दोनों बातें अपने ही अन्दर हैं। यह तो प्रभाव किसका-कब रहता है, मन के ऊपर, वही मुख्य बात है। इसलिए साधकों को इसमें सीख यह मिलती है कि उन कामनाओं को, उन विचारों और संकल्पों को मन में न आने दें, जो भजन में बाधा डालने वाले हैं। जो हमें साधना में असफल कर देने वाले हैं। हम उन सजातीय विचारों को मन में स्थान दें, जो हमें सफलता की ओर ले जाने वाले हैं। इस तरह से कामीपना और धीरपना, ये दोनों बातें अपने अन्दर की हैं। राम के चरित्र मानस में, इस तरह से होते हैं। सब के अन्दर होते रहते हैं। वही तो बैठा है, सबके अन्दर। क्या यहाँ कोई दूसरा बैठा है ?

‘ईशावास्यमिदं सर्वम्।’

सर्वत्र ईश्वर ही, तो है। वह सबके अन्दर बैठा अनन्त लीलाएं कर रहा है। हर एक के अन्दर एक रामायण चल रही है-

‘राम अनन्त अनन्त गुन, अमित कथा विस्तार।’

उमा कहउं मै अनुभव अपना। सत हरि भजन जगत सब सपना॥

यह शंकर की वाणी, अनुभव की बात आ गई। तो अभी-अभी साधक के मन में हार खा जाने से जो कमजोरी आई थी, उसके लिए समाधान मिल गया। अपने ही अन्दर से, अनुभव में आ गई यह बात, कि भजन ही ठीक है। इसी मूल चीज को पकड़े रहने में कल्याण है। यही यथार्थ है। अन्दर ही अन्दर इष्ट की वाणी मिल जाती है। अनुभूतियां मिलती रहती हैं। संकेत मिल गया कि भजन में दृढ़ता से लगे रहो, और जो अन्दर कमजोरी की बातें आ रही हैं, इन्हें छोड़ो। आगे बढ़ो। साधना के रास्ते में रुकावटें आती हैं। उनको पार करते हुए निरंतर आगे बढ़ते जाना है। हीन भावनाओं को छोड़ते जाना है। भजन को पकड़ते जाना है। मूल चीज है भजन, यह न छूटने पावे, चाहे कितनी ही बाधा आए। धैर्य के साथ, आगे ही आगे बढ़े। पीछे मुड़कर देखना नहीं है। दुख, बीमारी, परेशानी का रोना रोता न फिरे। इसे परीक्षा माने, और इसे पास करे। फिर आगे बढ़ें। संसार असत्य है, इसमें सुख असत्य हैं। इनमें रमेंगें, तो सत्य छूट जाएगा, भजन छूट जायगा। इसलिए सत्य को लिए रहो। सत्य है परमात्मा। सत्य है भजन। उसमें लगे रहना है। उसमें लगन लगी रहेगी, तो असत्य से बचे रहेंगे। उन्नति होती है, कि क्या होता है, इन बातों में समय और इनर्जी न गवाएं। बस भजन में लगा रहे-ऐसा नियम है। ऐसी ये साधना क्षेत्र के विशेषज्ञ महात्माओं की, अनुभव सिद्ध युक्तियां, इस मानस में आती गई हैं-बीच बीच में। इन्हें पकड़ते चलना चाहिए। लिखा भी है कि,

“हृदय सिंधु मति सीप समाना। स्वाति सारदा कहहिं सुजाना॥

जौ बरसै वर वारि विचारु। होंहिं कवित मुक्तामनि चारु॥

“जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं, राम चरित वर ताग।

पहिरहिं सज्जन विमल उर, सोभा अति अनुराग॥”

सज्जन अर्थात् साधु वही कहा जायगा, जो इन युक्तियों को लेकर चले। युक्ति के साथ राम चरित को हृदयंगम करे। अन्यथा जो कीमती विचार रूप मणिमुक्ता इसमें गूँथ दिए गए हैं, उनसे वंचित रह जाएंगे - बस यह बाहरी चरित रूपी तागा ही हाथ लगेगा। गोस्वामी जी स्पष्ट कह रहे हैं कि यह राम चरित तो माध्यम है। इस धागे में जो सद्सिद्धान्त के सूत्र पिरोए गए हैं, वह असली चीज है। उनको हृदयंगम करना है। इन रत्नों को सहेजते जाना है।

पुनि प्रभु गए सरोवर तीरा। पंपा नाम सुभग गंभीरा॥

संत हृदय जस निर्मल बारी। बांधे घाट मनोहर चारी॥

जहं तहं पियहिं विविध मृग नीरा। जनु उदार गृह जाचक भीरा॥

जब साधक का हृदय भगवान के अनुराग से भर जाता है, प्रेम से सराबोर हो जाता है, तब उसे पंपासरोवर कहते हैं। भगवान में लगन लग गई जिसकी, जिसके मन-बुद्धि में ईश्वर छा गया है, ईश्वरीय अनुराग-रस से सराबोर हो गया है, उसका अन्तःकरण पम्पासर कहा जाता है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, ये चार इसके घाट हैं। ऐसे अनुरागी संत-साधकों के मन रूपी मृग वहाँ ईश्वरीय-अनुभूतियों रूपी जल का पान करते हैं। अनेक साधकों के मन ही अनेक मृग हैं। तो संतोष रूपी शबरी भेजती है वहां। साधक में जब संतोष आ जाता है, इच्छाएं संसार की नहीं रह जातीं, तब यह स्थिति बनती है। तब भगवत्प्रेम से सराबोर होता है। इच्छाएं रहेंगी तो पदार्थों में प्रेम होगा।

दो. - पुरइनि सघन ओट जल, वेगि न पाइय मर्म।

मायाछन्न न देखिए, जैसे निर्गुण ब्रह्म ॥

अनेक साधक जो सद्गुरु के बताए अनुसार भजन करते हैं। भगवान के प्रेम में विभोर रहते हैं। जो परिस्थिति है, उसीमें संतुष्ट रहते हैं। ऐसे साधक जब विचार करते हैं, तो पाते हैं कि माया का प्रसार सर्वत्र है। माया सर्वत्र छाई हुई है। और माया के पीछे परमात्मा छिपा हुआ है, दिखाई नहीं देता। माया के आवरण से आच्छादित परमात्मा का आभास उसे होने लगता है। अपनी समझ के अनुसार, ईश्वर को इस माया के प्रसार में भी देखने लगता है। अन्दर मन-बुद्धि तक माया ही जो भरी है, उसी के बीच- बीच, उसे एक झलक परमात्मा की भी मिलने लगती है। और उसी झलक को पाकर वह मस्त रहने लगता है। उसे पूरी तरह से पकड़ पाने की ललक बढ़ जाती है। तो फिर माया के आवरण को हटाने का उपाय होने लगता है। प्रगति होने लगती है।

दो.- सुखी मीन सब एक रस, अति अगाध जल माहिं।

जया धर्मसीलन्ह के, दिन सुख संयुत जाहिं॥

जो साधक, माया के प्रभाव को मन-बुद्धि से हटाकर, गहराई से ईश्वरीय भवना में प्रवेश कर जाते हैं। परमात्मा की अनुभूति में जिन्हे एक रसता मिल गई है। निरंतर उसमें रमने लगते हैं, और गहराई में प्रवेश कर जाते हैं, वे सुखी हैं। उसी में मस्त रहते हैं, निश्चिंत और निर्द्वन्द्व रहते हैं। शान्ति सुख का अनुभव करते हैं। सदैव भगवान की शरण में समर्पित रहते हैं। वे अबाधित रहते हैं-गहरे जल की

मछली की तरह। इस तरह से यह पंपासर की रमणीकता, साधक की अच्छी स्थिति का चित्रण है।

विकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा॥

बोलत जल कुक्कुट कल हंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा॥

सुंदर खग गन गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बोलाई॥

ताल समीप मुनिन्ह गृह छए। चहुँ दिसि कानन विटपसुहाए॥

साधकों में कुछ अच्छे, कुछ कमजोर, कुछ मध्यम हाते हैं। उनके स्तर के अनुसार उनकी रहनी, उनके रंग-ढंग अलग-होते हैं। सभी अपनी समझ के अनुसार ईश्वरीय विचारों को लेते हैं। ये जो विभिन्न विचारों, भावों वाले साधक भगवान के प्रेम में प्रफुल्लित रहते हैं, अनेक रंगों के कमल खिले हैं। और अनेक प्रकार के पक्षी जो बोल रहे हैं, वे साधक के अन्तःकरण में आने वाले विविध सजातीय संकल्प और चिंतवन हैं, भावनाएं और कल्पनाएं हैं। जो साधन-पथ के इन पथिकों को, अर्थात् साधकों को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। मतलब यह है कि साधक जो साधन पथ का पथिक है, वह इन मधुर लगने वाले संकल्पों में आकृष्ट होने लगता है। 'जात पथिक जनु लेहिं बोलाई।'

पंपासर के समीप मुनियों के घर बने हैं। इसका अर्थ है कि भजन करते-करते जब साधक का मन रुकने लगता है। संसारी चिन्तवनों से मुक्त होकर मन जब भगवान का ही चिंतन-मनन करने लगता है, तो इसे मुनि कहा जाता है। तो जब हृदय में ईश्वर का अनुराग आ गया। प्रेम में सराबोर हो गया तो फिर मन उसमें लगा ही रहेगा। भगवान के चिन्तन मनन में लगा रहेगा। वहीं रहेगा, वहीं टिकेगा, घर बना लेगा। ताल समीप मुनिन्ह गृह छए।

सुन्दर प्राकृतिक वातावरण का चित्रण जो यहाँ आया है, उसका तात्पर्य है कि जब साधक भजन में प्रगति कर लेता है तो उसके अन्दर शान्ति आती है, अच्छा महसूस होता है। प्रसन्नता का अनुभव करता है। अन्तःकरण की उसी स्थिति का यह चित्रण है।

देखि राम अति रुचिर तलावा। मज्जन कीन्ह परम सुख पावा॥

देखी सुन्दर तरुवर छाया। बैठे अनुज सहित रघुराया॥

तहं पुनि सकल देव मुनि आए। अस्तुति करि निजधाम सिधाए॥

महर्षि पतंजलि कहते हैं - मूर्ध ज्योतिषि सिद्ध दर्शनम्। साधना की उच्चस्थिति में जब पहुँच जाता है साधक, तब ये सब ऋषि-मुनि, सिद्ध-देवता दिखाई पड़ते हैं। ये सब

अपने ही अन्दर के सूक्ष्म और श्रेष्ठ अवयव हैं। इनके द्वारा स्तुति किए जाने का मतलब है कि उसकी साधना की सफलता प्रमाणित की जा रही है। तब फिर वह साधक परम प्रसन्न हो जाता है।

बैठे परम प्रसन्न कृपाला। कहत अनुज सन कथा रसाला॥

विरह वंत भगवंतहिं देखी। नारद मन भा सोच बिसेषी॥

मोर साप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुख भारा॥

ऐसे प्रभुहिं विलोकउं जाई। पुनि न बनिहि अस अवसर आई॥

यह विचारि नारद कर बीना। गए जहां प्रभु सुख आसीना॥

अब नारद आए। जब सारे देवता, सिद्ध, मुनि, स्तुति करके चले गए। अरे! नारद तो ऋषियों-मुनियों में आगे-आगे रहते हैं, यहाँ कैसे पिछड़ गए? असल में ये सब बातें बाहर की हैं ही नहीं। नारद कहते हैं आकाश को। नारद के आने का मतलब-अब यहाँ साधक को आकाशवत् वृत्ति मिल गई। यह उच्चकोटि की पहुँच मिल गई।

अपने अन्दर के आकाश में जो कामनाएं पहले आई थीं, काम भाव की-विश्वमोहनी के प्रसंग में। उनसे विरत होकर और मेहनत करके आज इस स्थिति तक पहुँचा है साधक। इस बात का लेखा जोखा है इस प्रसंग में। तो ये जो कल्पनाएं काम, क्रोध, मोह की आती हैं-अपने ही अन्दर आती हैं। इन्हीं से हम अपने ही खोदे हुए गड्ढे में गिर जाते हैं। फिर तो भगवान ही कृपा करे, तो बच पाता है साधक। 'जे राखे रघुवीर, ते उबरे तेहि काल महुं।' यही सब अन्दरूनी रहस्य की बातें हो रही हैं नारद और राम के बीच में। यह सब हमारे अन्दर के आकाश में सूक्ष्म विचारों और अनुभूतियों का जो सिलसिला चलता है, उसी का नाट्य रूपांतर किया गया है। गोस्वामी जी ने उसे अपनी भाषा में लिपिबद्ध कर दिया है।

तो नारद आकाश को कहते हैं। यह सतयुग, त्रेता, द्वापर सब समय में रहता है। अजर अमर है। हर जगह मौजूद है। वीणा लिए रहता है। वीणा प्रतीक है शब्द का। शब्द गुण है आकाश का। आकाश में ही शब्द होता है। इस तरह से आज का समाज महात्माओं की इस आध्यात्मिक शैली को ग्राह्य नहीं बना पा रहा है। इसलिए नारद को, इन्द्र को, ब्रह्मा को, शंकर को, तमाम ऐसे प्रतीकों को देवी-देवताओं को, या तो आंख मूंदकर वैसा का वैसा मान लेते हैं लोग-जैसी परम्परागत मान्यता इनकी चली आ रही है, हमारे समाज में। अथवा फिर झूठा मिथक मानकर, यह पढ़ा लिखा वर्ग भी, इसके रहस्य को ढूँढ़ने के बजाय, उपेक्षा कर देता है। होना तो यह चाहिए कि

इन बातों को मानवीय ज्ञान-विज्ञान की विशिष्ट उपलब्धि के रूप में लिया जाय और मानव कल्याण की पृष्ठभूमि में नए सिरे से इनका व्यापक स्तर पर अध्ययन-विश्लेषण किया जाय। यह विचार किया जाय कि धर्म ग्रंथों तक ही ऐसी बातें क्यों सीमित रखी गई हैं - इसके पीछे क्या रहस्य हो सकता है ?

करत दण्डवत लिए उठाई। राखे बहुत बार उर लाई॥

स्वागत पूछि निकट बैठारे। लछिमन सादर चरन पखारे॥

अब राम ने नारद को हृदय से लगा लिया, उसे छोड़ ही नहीं रहे। तो यह बाहर ऐसे नहीं होता कि लिपटे ही रहें। यह साधक के अन्दर की बात है। साधक को जो आकाशवत् स्थिति मिली है, उसे वह छोड़ना नहीं चाहता। उसी में बना रहना चाहता है। यह मतलब है यहाँ। साधक आकाशवत् बना रहना चाहता है। बगैर राम के नारद नहीं, और बगैर नारद के राम नहीं, ऐसी बात है यह। लेकिन गोस्वामी जी की शैली है, कि आध्यात्मिक रहस्य की बातों को सामाजिक व्यवहार की बातों में छिपाकर रखते हैं। इसलिए सामान्यतया लोग गहराई में छिपी, गोप्य ज्ञान की बातों को समझ नहीं पाते, ऊपर की बातों को पकड़ते जाते हैं। ईश्वरीय चरित्रों को भी, स्थूल संसारी ढंग से लेते हैं। साधक इन चरित्रों को अपने अन्दर देखता है। क्योंकि वह जानता है, कि यह समाज की जो नियमावली बन गयी है, यही तो बंधन है। कबीर कहते हैं-

‘लोक बेद कुल की मर्यादा यहै गले की फांसी।’

आधा चलकर पीछे फिरिहै, हैवहै जग में हांसी॥’

यह जात-पात, झूठे रिश्ते, झूठे आडम्बर-आदमी इस फांसी से निकल नहीं पाता है। व्यक्ति ने अपने आपको, इस सामाजिक नियमावली के हवाले कर दिया है। उसका व्यक्तिगत जीवन, समाज की धारा में बहा जा रहा है, और उसे इसकी खबर तक नहीं है। जिन भाग्यशाली पुरुषों को किसी संत सद्गुरु के आश्रय में रहकर कुछ सुनने समझने का अवसर मिला है, उन्होंने दुनिया की इस अंधी दौड़ से अलग हटकर जीवन की सार्थकता सिद्ध करते हुए आत्मकल्याण का रास्ता अपनाया। सांसारिक शैली से हटकर, आध्यात्मिक जीवन जिया और मनुष्य होने का धर्म निभाया।

तो समझना चाहिए कि इस कथा के पीछे, सामाजिक बातों की ओट में जो आध्यात्मिक रहस्य भरा है, वह असली चीज है। इस बाहरी कथा रूप पुरइन से यह रहस्य ढका हुआ है। बेगि न पाइय मर्म। जल्दी समझ में नहीं आता यह गूढ़ रहस्य। ऊपर के पत्तों को ही देख पाते हैं। इसलिए अगर इस मर्म को पाना है, तो ऊपर

की जो बातें सामाजिक कायदा कानून की हैं, उन्हें हटाना होगा। तब वह अलौकिक तत्व ज्ञान, जो इसमें भरा है, मिल सकता है। तब उस पानी से भेंट हो सकती है। इसलिए बहिर्मुखता छोड़ो। अपनी ओर देखो। संसार से उलटकर अन्दर देखना शुरू करो। उल्टे हो जाओ। साधक का यह धर्म है-

‘या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।’

उल्टा चलना है। जिसमें दुनिया सोती है- ईश्वर की ओर से आंख मूंदे सो रही है- उसमें योगी जागता है। साधक को उसमें जागना है। उसे देखना, समझना और उसी में रहना है। और जिस माया क्षेत्र में दुनिया जाग रही है, उधर से हमें आंख मूंद लेना है। अगर दुनियावी पद्धति हम नहीं छोड़ पाते, तो वह अध्यात्म, वह परमात्मा, समझ में आएगा ही नहीं। असल में संसार की यह शैली जो वंशानुगत तरीके से भर गई है, दिल दिमाग में, वह जल्दी जाती नहीं है। उसी में हम तने रह जाते हैं। और इस तरह परमात्मा से दूर बने रहते हैं।

तो यहाँ जो नारद का प्रसंग है, उसमें यह समझना है, कि साधक को अन्तर्जगत में ऐसी अनुभूतियाँ मिलने लगती हैं कि हम कितनी बीमारियों में, माया में फँस गए थे। कैसे हमें बचा लिया गया। साधक को कैसे-क्या करना चाहिए, कैसे रहना चाहिए-ये सब बातें अन्दर आने लगती हैं। जैसे-जैसे बारीकी आएगी, अन्दर के आकाश में वाणी मिलने लगेगी। वहीं से सब होता है, बाहर कहीं कुछ है नहीं।

जन कहुं कछु अदेय नहिं मोरे। अस विसवास तजहु जनि भोरे।।

तब नारद बोले हरषाई। अस वर मागउं करउं ढिठाई।।

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक ते एका।।

राम सकल नामन ते अधिका । होउ नाथ अघ खग गन बधिका।।

अरे भाई ! राम तो वहाँ खुद परेशान घूम रहे थे। सीता को ढूँढ़ते फिर रहे हैं। शबरी से गोहार लगा रहे हैं, कि कहां जाऊं क्या करूं? कैसे मिलेगी सीता? और उधर देवता, ऋषि, मुनि, सब स्तुति करने आते हैं तो उन्हें एवमस्तु-वरदान भी दे रहे हैं। यह कैसे है, कि एक तरफ रो रहा है, एक तरफ भंडार खोले बैठा है। यह किसी की समझ में आएगा, क्या कि यह कैसा भगवान है? एक तरफ परेशान है, और एक तरफ सब का स्वरूप भी है। शान्त, शुद्ध, निर्विकार। तो इसमें आदमी भ्रमित हो जाता है। यही इसमें बड़ी भारी बीमारी बन गई है। हम कहते हैं, ईश्वर को, जैसा वह है-वैसा क्यों नहीं बताया जाता? उसे ऐज इट इज (ज्यों का त्यों) क्यों नहीं लिया जाता? इस तरह तो जो बुरी से बुरी चीज है, वह भी भगवान है। और जो

भली से भली है, वह भी भगवान है। सब भगवान ही तो है—सर्वम् खलु इदम् ब्रह्म। तो नारद भी भगवान है, सीता भी भगवान है, राम भी भगवान है, शबरी भी है। और सब अपनी अपनी जगह काम कर रहे हैं। यह बड़ी भारी विचित्रता है। यह समझ में आ जाय, सार्वभौमिकता के विचार आ जायं, तब ठीक रहता है। सब एक ही है, भिन्नता नहीं है। एक ही सोने के गहने बनते हैं। अलग-अलग नाम रूप के होते हैं। अलग-अलग अंगों में पहने जाते हैं। लेकिन है एक सोना ही। इस तरह से सब एक ही है। जीवात्मा, परमात्मा का अंश है, उसी का रूप है। उसी की यह राम कहानी है। उसी के सब अवयव हैं – जितने पात्र हैं उसकी इस राम कहानी के।

रामायण में जीवात्मा का रूप विभीषण को माना गया है। 'जीव भवदंघ्रि सेवक विभीषण'। इस तरह से मूलतः परमात्मा का रूप विभीषण का है। जब से राम को मिला है विभीषण, तो हमेशा उसी से हर बात पूछते हैं। और उसे महाराज-महाराज कहते रहते हैं राम। तो वही सब बताता है, साधक को। हाँ, बताएगा तो तभी, जब रावण का त्याग करके, राम के पक्ष में आ जाएगा। उससे भेंट हो जाय, उसका मार्ग दर्शन मिलने लग जाय, तो सब काम बन जाते हैं। विजय मिल जाती है। उस विभीषण से भेंट होना चाहिए, जो आत्मा रूप में सबके शरीर में बैठा हुआ है। वह, परमात्मा है विभीषण रूपी जीव। वह निरवयव है। उसके तीन रूप हैं। एक है शरीरों में जीवात्मा के रूप में। तो इस रूप में अविद्या माया को लिए रहता है। दूसरा ईश्वरात्मा, जो भक्त साधकों के हृदय में विद्या माया के सहित विष्णु के रूप में रहता है। और तीसरा परमात्मा जो सर्वत्र, सबरूपों में रहते हुए भी सबसे अलग रहता है। इस तरह से ये तीन कैटेगरी हैं, स्थितियां हैं— उसकी। है वह एक ही। विभिन्न रूपों में उसी एक परमात्मा का निरूपण शास्त्रों में किया गया है। जब ऐसी समझ दृढ़ हो जाय, तब वह सही बोध कहा जायगा। तत्त्वबोध कहा जायगा। ज्ञान कहा जाएगा।

तो यहां नारद ने वरदान मांगा कि राम नाम सबसे श्रेष्ठ माना जाय, भगवान के नामों में। वैसे तो जिसमें जिसकी रुचि होती है—वही नाम उसके लिए ठीक रहता है, ऐसा नियम है, इसमें। अब नारद तो खुद ही नारायण-नारायण बोलते दिखाए जाते हैं, इन्हें राम नाम से इतना प्रेम कैसे हो गया? तो यहाँ तुलसीदास जी बोल रहे हैं—नारद के मुख से। अपनी रुचि की बात कह रहे हैं। गोस्वामी जी नाम-साधना के महान विशेषज्ञ थे। वह बताना चाहते हैं, कि जप के लिए 'राम' नाम सबसे ज्यादा उपयुक्त है। जो नाम छोटा हो और परमात्मा का अर्थ धारण किए हुए हो। उच्चारण में सुविधा जनक हो और मांगलिक हो। जैसे – ओम, राम, शिव आदि। भजन के लिए ऐसे नाम अच्छे माने जाते हैं। 'अघ खग गन बधिका।' मतलब कि अपने अन्दर

के विकारों को हटाने के लिए नाम जप किया जाना चाहिए। सांसारिक लाभ लेने के लिए, साधना नहीं है, पारलौकिक लाभ के लिए है।

तब विवाह मैं चाहउं कीन्हा। प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा॥

सुनु मुनि तोहि कहउं सहरोसा। भजहिं जे मोहिं तजि सकल भरोसा॥

करउं सदा तिन्हकै रखवारी। जिमि बालक राखै महतारी॥

यह स्वाभाविक नियम है कि जो व्यक्ति हमारा चिंतवन करेगा, उसका चिंतवन हमें भी होगा। तो भक्त का ध्यान भगवान को रहता ही है। जैसे तुम लोग यहां रहते हो किसी को बीमारी आ गई, बुखार हो गया। अब रहा नहीं जाता तुम्हें। यह होता यों है, कि जब तुमने माया से हटकर भगवान के यहाँ एडमीशन ले लिया, तो भगवान इधर की पढ़ाई का कोर्स शुरू कर देता है। भजन का क्रम शुरू हुआ, तो सबसे पहले बीमारी आती है। भगवान के यहाँ भर्ती हुए, तो वह परीक्षा लेता है कि इसमें कितनी गुंजाइस है। साधना कर पाएगा या नहीं। तो इसमें घबड़ाए नहीं। बीमारी से क्या डरना अथवा मरने से भी क्या डरना? जो पैदा हुआ है, वह तो मरेगा ही। फिर साधना की दुनिया में जो आ चुका है, उसे मरने से नहीं डरना चाहिए। ये सब परेशानियां भगवान हमारे कल्याण के लिए भेजते हैं। जैसे किसी छोटे से बच्चे को फोड़ा हो जाता है, तो उस बच्चे की माँ डाक्टर के पास ले जाती है। आपरेशन कराती है उसका। बच्चा रोता चिल्लाता है। लेकिन फोड़े को ठीक कराने के लिए आपरेशन जरूरी है। तो ऐसे ही है। भगवान अपने भक्तों की खराबियों को दूर करने के लिए, तकलीफ भी देते हैं। नारद के इस प्रसंग से हमें यह शिक्षा लेना चाहिए, कि हमारे मन में संसारी विषयों की जो कामनाएं आती हैं, वे न पूरी हों तो अच्छा मानें। निष्काम भावना आ जाय, तो वह बहुत अच्छी बात है। भविष्य मंगलमय हो जाएगा। और अगर कामनाएं पूरी हो गईं, और उसमें खुशी आ गई, तो वह साधक के लिए अच्छा नहीं रहता।

सुनु मुनि संतन के गुन कहउं। जिन्ह ते मैं उनके बस रहउं॥

षट विकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुखधामा॥

अमितबोध अनीह मितभोगी। सत्यसार कबि कोबिद जोगी॥

यहाँ साधकों के लक्षण बताए गए हैं। इसमें ध्यान देने की बात यह है, कि जो बातें साधक में होनी चाहिए, वे सब आन्तरिक सद्गुण हैं अथवा अच्छे आचरण की हैं। जिसमें ये सब सजातीय धर्म हों उसे संत कहेंगे, महात्मा कहेंगे। समाज में वेष और तिलक मुद्रा से साधु की पहचान होती है। यहाँ तिलक, मुद्रा, कंठी, माला,

वेष-विन्यास किसी चीज की चर्चा तक नहीं है। साधना व्यक्तिगत करने की चीज है, समूह की चीज नहीं है। इसलिए साधक के व्यक्तिगत गुण-धर्म यहाँ बताए गए हैं। सामान्य रूप में दुर्गुण जिन्हें कहा जाता है, उनको त्यागना और सद्गुणों को लेते जाना, यह साधक का धर्म है। साधु का मतलब है सरल और अच्छा आदमी। जो आत्मोन्मुख है। जो अच्छाइयों को धारण करता है, बुराइयों को दूर करता है। इच्छा नहीं करता और निमय संयम से रहकर साधन भजन करता है। वह साधु है, संत है, साधक है। सधुवई बाहर की नहीं अन्दर की चीज है। अपनी व्यक्तिगत चीज है। बाहरी रूप रेखा तो समाज के लिए है। साधु के लिए साधुता ही उसका मुख्य धर्म है।

हरि: ओम